मुद्रक—
केशवानन्द
ग्रामोत्थान प्रिंटिंग प्रैस, संगरिया

प्रथम बार १००० | मूल्य २॥) | दिसम्बर १९५२

प्रकाशक—
बद्रीप्रसाद गुप्ता
मंत्री, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया

प्राक्कथन

आज हम सुविज्ञ वाचक-वृन्द के सम्मुख जीवन ज्योति का पंचम पुष्प " महर्षि सुकरात " उल्लसित हृदय से उपस्थित करते हैं। इस में मानव जीवन का विवश विवेचन या आकर्षक आलोचन नहीं है, अपितु सरल सुगम मन भाती भाषा में महर्षि सुकरात का रोचक रोचिष्णु तथा रोमांचकारी संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त वर्णित है। प्रस्तुत पुस्तक के थोड़े से पृष्ठों में महर्षि सुकरात के सत्य-प्रेम, अभियोग और विष पान के समय के अलौकिक-कथोपकथन का विशेष वर्णन है।

श्रेष्ठजन जीवन में जैसा आचरण करते हैं, सर्व साधारण सांसारिक जन उसी को परम प्रमाणिक मान कर मनोरंजन एवं मनोमोद मनाते हैं। उन श्रेष्ठ जनों का आचार जनाचार बन जाता है। इसी कारण से महापुरुषों के जीवन वृत्तान्त लिखे, पढ़े तथा सुने जाने की प्रथा प्रचलित हो गई है। जनजन के जीवन में ज्योति जगाने के लिये जीवनचरित ही एक उत्तम और उल्लेखनीय उपाय है। कहा भी है कि दीप से दीप दीप्त होता है और जीवन से जीवन ज्योति जगती है।

यद्यपि गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः—पथ के पथिक को पथानुसरण करते हुये कहीं न कहीं अनवधानवश ठोकर लग ही जाती है—उस कहावत के अनुसार यह जीवनी भी निर्दोष नहीं हो सकती ; तथापि हमारा यह विमल व विशद विश्वास है कि यह लघु जीवनी सदोष हो कर भी अपने प्रेमी पाठकों को जीवन ज्योति जगाने में अवश्यमेव सफल सहायता प्रदान करेगी।

हाँ, यह बात अवश्य है कि दोषदर्शक सर्वत्र दोष ही दोष देख कर सदा दुःख दलदल में धंसा रहता है और गुण ग्राहक सर्वत्र गुण ही गुण ग्रहण कर के सुशान्त सुख-सागर में सदा सुखदायी स्नान किया करता है। अतः मानव-मराल इस महर्षि सुकरात-मान-सरोवर में विकस्वराध्यन-विहार कर के मंगल-मधुर-मनोहर शिक्षा मौक्तिक प्राप्ति पूर्वक जीवन ज्योति जगा कर जन समाज को जगमगा देंगे।

ग्रन्थान्त में मृत्युंजय महर्षि सुकरात के पवित्र जीवन से मिलने वाली शिक्षाएं सकलित हैं। अन्त में यतात्मा, दृढ़ निश्चय, स्थिरमति, कष्ट सहिष्णु सर्वजनप्रिय, साधु वर्य, मरुभूमि पिता श्री स्वामी केशवानन्द जी महाराज का हार्दिक धन्यवाद है, जिन की अपार कृपा से यह पुस्तक प्रकाशित हो पायी है।

लेखक—

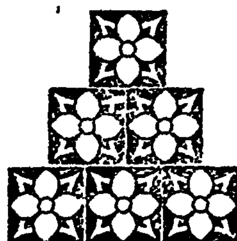
समर्पण

यह लघुपहार

उन निर्मल-मति होनहार बालकों के कोमल करों में सप्रेम समर्पित है, जिन्होंने महामहिम महर्षि सुकरात के सदृश महा पुरुष बन कर अपने महापुरुषार्थ से भूले भटके संचय एवं संग्रहशील संसार को परम पवित्र पुण्य-पथ प्रदर्शित कर के योग्य युगप्रवर्तक बनना है।



विषय—सूची



महर्षि सुकरात

जन्म

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले, यूनान देश में, ईसा से ४६६ वर्ष पहले, एक निर्धन कुल में एक बच्चे का शुभ जन्म हुआ। अपने कुल की प्रथा के अनुसार माता पिता ने उस बच्चे का नामकरण संस्कार कर के उस का नाम सुकरात रखा। यही बालक अपनी तर्क विद्या, यथार्थ ज्ञान तथा शुभ कर्मों के बल से महर्षि कहलाया।

माता पिता

१—सुक़रात के पिता का नाम सोफरोनिकस था। यह एक संग तराश था–पत्थरकट या पत्थर घड़ने वाला मज़दूर था। उस के पास परिश्रम के अतिरिक्त धनोपार्जन का और कोई साधन नहीं था। वह ज़मींदार या धनी नहीं था। एक महादरिद्र श्रमिक (मज़दूर) था।

२—सुक़रात की माता का नाम फ़िनारेटी था। यह अपने नगर एथैन्स में दाई का काम करती थी। दाई भी बहुत प्रसिद्ध नहीं, साधारण थी। यों तो भगवान् बुद्ध जैसे महापुरुष राजकुलों में भी जन्म धारण करते रहे हैं, परन्तु अधिकतर संसार के महापुरुष निर्धन

निर्बल, निःसाधन गृहस्थों के घरों में ही जन्म लेते रहे हैं। अतः साधारण ग्रामवासी किसान मजदूरों को भी अपने घरों में महापुरुष बनने वाले बच्चों के जन्म लेने या देने की पूरी २ आशा रखनी चाहिये।

बचपन तथा विद्या प्राप्ति

१— सुकरात के समय यूनान में प्रजातन्त्र राज्य था। प्रजातन्त्र राज्य में प्रत्येक कार्य प्रजा के हित को दृष्टि में रख कर किया जाता है। उस समय सामाजिक और राजनैतिक बातों की, धार्मिक शिक्षा तथा कला कौशल की विशेष उन्नति हो रही थी। शिक्षा अनिवार्य (लाज़मी) थी। इस लिये देश भर में विद्या तथा राजनीति का बोल

वाला था। कुशल कवि, नामी तथा निपुण (चतुर) नाटककार, उत्कृष्ट (उत्तम) उपन्यासकार तथा कलित (सुन्दर) कहानी लेखक उस समय वहां अनेक थे। ऐसी परिस्थिति में सुकरात का विख्यात प्रसिद्ध (विद्वान्) बन जाना एक स्वाभाविक बात थी।

२—निर्धन माता पिता के साथ रहने के कारण बचपन में जीवन का कोई विशेष आनन्द नहीं उठाया। अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़े। इसी लिये सुकरात कष्टसहिष्णु बन गया। उस के तपस्वी, निर्भीक तथा एक महापुरुष बनने में दरिद्रता का काफ़ी हाथ था। अतः हमें निर्धनता के कारण निराश नहीं होना चाहिये। हम भी महर्षि सुकरात की तरह कष्टों की कोई चिन्ता न करते हुये बड़े

आदमी बन सकते हैं। इन बातों के सिवाय सुकरात के बचपन तथा यौवन के विषय में और कोई विशेष बात ज्ञात नहीं है।

सुकरात का स्वभाव

१—वाचक वृन्द ! यह तो आप अनुमान से ही जान सकते हैं कि जब सुकरात एक महापुरुष था तब उसका स्वभाव अच्छा ही होगा। परन्तु इस का स्वभाव स्वभाव से ही अच्छा था। आरम्भ से अन्त तक सुन्दर स्वभाव किसी बिरले ही महापुरुष का देखने में आता है। हमारे चरित्रनायक सुकरात इन्हीं विरले ही महापुरुषों में से एक थे। तर्क (दलील) करने का आरम्भ से ही अभ्यास था। तर्क की तुला या तराजू पर तोले बिना

किसी की कोई भी बात कभी भी मानने को तैयार नहीं होते थे।

२—सुकरात बड़े धीर, गम्भीर तथा वीर थे। युवकों से बातचीत करने में बहुत रुचि रखते थे। मृत्यु से कभी नहीं डरते थे। हां, अधर्म्म से सदा भयभीत रहते थे। उत्साह तथा साहस का धनी था। गृहस्थ होते हुये भी पूर्ण वैरागी था। जीविका की कभी चिन्ता नहीं करता था। जो कोई सामने आ जाता, उस से वार्तालाप किये बिना नहीं रह सकता था। प्रश्नोत्तर बहुत प्रेम तथा आग्रह से किया करते थे। लोक समीक्षा करना (सब लोगों के गुण दोष दिखाना) सुकरात का सहज स्वभाव था। प्राणों की परवाह न करने वाला कर्त्तव्यपरायण, दूरदर्शी तथा धुन का पक्का

मनुष्य था। सुकरात के लिये संसार भर में सब से कठिन कार्य चुप रहना था।

३—सत्यवादी तथा स्पष्टवक्ता था। " स्पष्टवक्ता न वंचकः " के अनुसार स्पष्ट वादी होने के कारण से जीवन भर कभी किसी से कोई छल कपट नहीं किया। दुष्ट बलवानों से भी कभी नहीं डरता था। जो कोई भी सामने आ जाता था, उस की बुद्धि की परीक्षा करने में दिन भर उलझा रहता था। सुख दुःख, हर्ष शोक, मानापमान, हानि लाभ, गर्मी सर्दी आदि उस पर समान रूप से ही प्रभाव डालती थीं। किसी बात के कह डालने में पूरा सनकी था। प्रथम प्रकार का सहनशील था क्षमाशील था। मृत्यु का भी

मित्र की तरह स्वागत किया । इसी लिये सुकरात "मृत्युंजय" कहलाया । इस अनुकरणीय स्वभाव से हमें भी लाभ उठाना योग्य है ।

सत्संग

सुकरात सत्संग की बहुत महिमा तथा आवश्यकता समझता था । देश भर में ऐसा कोई प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था, जिस के पास सुक़रात न पहुँचा हो , ज्योति से ज्योति जगती है—के अनुसार सुकरात ने सत्संग से बहुत कुछ सीखा, काठ के संग लोहा भी तर जाता है के अनुसार दूसरों को तैरने वाला काठ और अपने को डूबने वाला लोहा समझ कर सत्संग से सच्चा लाभ उठाया । जो मनुष्य दूसरों को सिखाने की दृष्टि से व्यवहार

करता है, वह अपने जीवन को कोरा रख लेता है और जो दूसरों से सीखने की दृष्टि से आच॰ रण करता है, वह किसी दिन संसार का महापुरुष कहलाता है। यही बात हम महर्षि सुकरात के जीवन में पाते हैं। हमें भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण रखते हुये अपने जीवन को उत्तम एवं उन्नत करना उचित है।

शारीरिक गठन

सुकरात का नाक और सिर ऊँचे थे। नेत्र तेज भरे थे। चेहरा तथा वक्षःस्थल विशाल और शरीर भारी भरकम था। स्वास्थ्य अच्छा था। उस के स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन था। एक साधारण और मोटा सा रूईदार चोग़ा विशेष परिधान (लिबास) था। उसी को धारण कर के एथेन्स नगर के बाजारों में घूम घूम कर लोगों से तर्क वितर्क किया करता था।

विवाह

तत्कालीन यूनान तथा उन के कुल की प्रथानुसार उन का विवाह बड़ी धूम धाम के साथ सम्पन्न हुआ था । पूरे यति, योगी और वैरागी होते हुये भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया था । सुकरात की स्त्री का नाम जनथीपी था । जनथीपी बहुत कठोर स्वभाव की स्त्री थी। हठ करना उस का नित्य का धर्म था। वह धर्मपत्नि क्या एक प्रकार की खड़-खाद थी। परन्तु धन्य है सुकरात जो ऐसी झगड़ालू पत्नी के साथ भी शान्तिपूर्वक रहता था। फिर भी सुकरात का गृहस्थ जीवन सुखमय नहीं, दुखमय ही था इस दुखी जीवन ने ही उस को सुपथगामी बनाया था। दुःख की मनुष्य जीवन में बड़ी महिमा तथा

आवश्यकता है। सुख के समय मनुष्य में दोष आते हैं और दुःख के समय गुणों का समावेश एवं संचार होता है। अतः स्याने मनुष्य दुःख का सदा खुले हाथों स्वागत किया करते हैं। हमें भी दुःखों से घबराना नहीं चाहिये। सुकरात के तीन पुत्र थे। उन के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

निर्वाह

१—सुकरात की लोगों से बात चीत करने की जन्मजात बान थी। घर में जनथीपी क्लेश रखती थी। सुक्रात इस क्लेश से बचने के लिये अधिक समय घर से बाहर लोगों के साथ तर्क वितर्क में ही व्यतीत करना अच्छा समझता था। धनोपार्जन की अपेक्षा ज्ञानोपार्जन में अधिक संलग्न रहता था। धन कमाने में

कोई विशेष रुचि नहीं थी। हां जहां ज्ञान चर्चा होती थी, वहां दिन रात एक कर देता था। अतः आयु भर निर्धन रहा । महापुरुषों की लक्ष्मी से प्रायः अनबन ही रहा करती है हां सरस्वती इन के चरणों की चेली होती है । हमें भी धन की निस्बत विद्या से अधिक प्रेम रखना चाहिये। यही सन्मार्ग है।

२— सुकरात ने जन्म से मृत्यु पर्यन्त गरीबी में ही गुजारा किया। दरिद्रता देवी से उन का पर्याप्त परिचय था। कंगाली ने कभी पीछा नहीं छोड़ा सच तो यह है कि कंगाली से पिण्ड छुड़ाने का कभी प्रयत्न भी नहीं किया गया। बड़े बड़े धनवान भी जब तक धन को त्याग कर कंगाल नहीं बन जाते, तब तक वे आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाते।

निर्धन, त्यागी, तपस्वी लोगों का मान, धनवानों तथा राजे महाराजों से सदा अधिक ही होता रहा है ।

३—भोजन मिले या न मिले, वस्त्र मिलें या न मिलें, घर की हालत अच्छी हो या न हो, इस की सुकरात ने कभी चिन्ता नहीं की । ये सब वस्तुयें उस की दृष्टि में गौण थीं । निर्धन पति से पत्नी प्रायः रुष्ट ही रहा करती है । स्त्रियां कमाऊ पति को ही अच्छा समझती हैं । इसीलिये जनथीपी सुकरात को प्रायः झिड़कती रहती थी । यदि सुकरात धन कमाता तो जनथीपी का व्यवहार उस के प्रति शायद कुछ नरम ही होता ।

सुकरात के समय यूनान की परिस्थिति

१—थोड़े दिन पहले यूनान में अत्याचारी शासकों का राज्य था । जनता जागृत हुई ।

अत्याचार जनता को जगा दिया करता है। अत्याचारी शासकों का सिंहासन उलट दिया। प्रजातन्त्र प्रणाली की स्थापना हो गयी। लोकतन्त्र राज्य उस समय किशोरावस्था में था। इस लोकतन्त्र प्रणाली के कारण से प्रजाजनों में स्फूर्ति तथा अदम्य उत्साह उत्पन्न हो गया था। सर्वत्र नवजीवन का संचार दृष्टिगोचर हो रहा था। इस राजनैतिक परिवर्तन के कारण से अनेक परिवर्तन हो रहे थे। कारण कि शासन प्रणाली के बदल जाने पर प्रायः सभी प्रणालियां बदल जाया करती हैं।

२—तत्कालीन यूनानी लोग कुछ विलासप्रिय थे। भोग विलास की वस्तुओं को अधिक पसन्द करते थे। उन के लिये पण्डे पुजारी स्वर्ग का ऐसा चित्र खेंचते थे कि विलासप्रिय लोग स्वयमेव उधर खिंच जाते थे। कुछ लोग शूरवीर, युद्धप्रिय तथा राज्य

के इच्छुक थे। उन के लिये पण्डे पुजारी परलोक की ऐसी सुन्दर व्याख्या करते थे कि वे लोग खामखा उधर खिंच जाते थे। इस तरह से धर्म की व्याख्या लोकमत के अनुसार की जाती थी। अपना उल्लू सीधा करने वाले चतुर लोग सब बातों की व्याख्या लोकमत के अनुसार ही किया करते हैं।

४—इन बातों से जनसमाज की उन्नित नहीं अवनति होती है। भक्त, साधक या उपासक लोग अपने इष्ट देव, आराध्य या उपास्य भगवान को हूबहू अपने जैसा ही मान कर उस की उपासना करते हैं। इस का स्पष्टार्थ यही है कि ऐसे लोग अपनी ही पूजा करते हैं। सदा उसी अवस्था में रहते हैं, जिसमें वे रहते आये हैं। पूजा, आराधना या उपासना का उन पर कोई प्रभाव नहीं

पड़ता। वे किसी प्रकार की उन्नति नहीं करते।

५—जब कोई विचारधारा चरम सीमा को पहुँच जाती है तो फिर उस का विरोध प्रारम्भ हो जाता है। विकास का यही नियम है। इसी नियम के अनुसार यूनान में भी एक सुधारक मण्डली खड़ी हो गयी। उस मण्डली के लोग सोफियाई कहलाते थे। लोगों को बहका कर लूटने खसोटने में ये पण्डे पुजारियों से भी कई दर्जे आगे थे। ऐसी परिस्थिति में हमारे चरित्रनायक महर्षि सुकरात भला चुप कैसे बैठ सकते थे। सुकरात ने लोगों को सच्चे विचार देने प्रारम्भ किये। स्वार्थी तथा भोले लोगों ने जोरदार विरोध किया। एक संघर्ष चल पड़ा। यही संघर्ष सुकरात का जीवन वृत्तान्त है।

जीवन की कुछ घटनायें

१—यशो दाता सुकरात

बचपन और जवानी के समय का जीवन वृत्तान्त अभी तक किसी पुस्तक में लिखा हुआ नहीं मिला है। अतः इस उक्त समय की कोई घटना नहीं लिखी जा सकती। चालीस वर्ष की अवस्था में हमारे चरित्रनायक सुकरात पोटीडिया के युद्ध में सम्मिलित हुये थे। एक साधारण सैनिक के रूप में देश सेवा की। एथैंस नगरी यूनान की राजधानी थी। कई छोटी छोटी रियासतें उस के आधीन थीं। पोटीडिया भी इन में से एक थी। वहां की प्रजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया। एथैंस के सैनिक उस विद्रोह को दबाने के लिये गये।

उन में एक सुकरात भी था । हाथ में तलवार लेकर उस ने युद्ध क्षेत्र में वह वीरता दिखाई कि सब लोग हैरान परेशान हो गये। उन के विस्मय की कोई सीमा नहीं रही। भूख प्यास और गर्मी-सर्दी सुकरात पर कोई प्रभाव नहीं रखती थीं। उस का एक योद्धा साथी था जिस का नाम आलसीवाइडी था । साथी के प्राण संकट में पड़े देख कर वीर सुकरात अपूर्व उत्साह के साथ कूद पड़ा। अपनी जान की कुछ भी परवाह न करके अपने साथी आलसीवाइडी को बाल-बाल बचा लिया । इस तरह से उस युद्ध में विजय प्राप्त की। बाद में सुकरात ने अन्य सैनिकों में यह प्रसिद्ध कर दिया कि यह युद्ध मेरे साथी आलसीवाइडी ने जीता है । सुकरात ने जहां जान की परवाह नहीं की वहां यश को

भी तिनके के समान समझा। इसे कहते हैं स्वार्थत्याग। हमारे इतिहास में सब से बड़े दानी कर्ण तथा हरिश्चन्द्र हो गुजरे हैं। उन्होंने सब कुछ दान में दे डाला था, परन्तु यश का दान तो वे भी नहीं कर पाये थे। धन्य है वह महर्षि सुकरात कि जिस ने अपना यश भी दूसरे को दे डाला इसी लिये सुकरात यशोदाता कहलाया। यह है महर्षि होने का सच्चा लक्षण तथा प्रमाण।

२-धीर सुकरात

पोर्टीडिया के युद्ध के कुछ समय बाद पीलोपोनोसीयाई का प्रसिद्ध युद्ध छिड़ गया। इस में भी सुकरात सम्मिलित हुआ। यहां भी सुकरात का लाशी नामक एक साथी था। इस युद्ध में संयोगवश एथैंस की पराजय

अर्थात् हार हुई। हार होने पर सेना भाग खड़ी हुई। सब सैनिक भाग गये। पीछे केवल सुकरात तथा लाशी ही रह गये। ये दोनों वीर भागे नहीं, क्योंकि ये दोनों धीर, वीर तथा गम्भीर योद्धा थे। लाशी ने कहा था कि यदि सब सैनिक सुकरात जैसे धीर होते तो एथैंस की अवश्य ही विजय होती।

इस के बाद भी कई बार युद्धों में शामिल हुआ। सर्वत्र ही हिमालय से भी धीर, समुद्र से भी गम्भीर तथा आकाश से भी उदार सिद्ध हुआ।

३-राजसभा का सभासद्

सुकरात

किसी युद्ध में एथैंसवासियों की जीत हुई। युद्ध समाप्ति पर सेनापति मृतक सैनिकों

की लाशों का पता नहीं लग सका । उस समय की प्रथा के अनुसार लाशों का अन्तिम संस्कार धर्मानुसार होना अत्यन्तावश्यक था । इस बात का पता जब एथेंस वासियों को लगा, तब वे क्रोध से आग बबूले हो गये ।

लाश तूफान के कारण से समुद्र में बह चुकी थीं । जांच पड़ताल करने पर पता लगा कि आठ सरदारों का अपराध है । उन आठों को अभियुक्त (मुलजिम) ठहराया गया । उन को सभा के सामने उपस्थित किया गया जिस राज सभा के सामने ये अभियुक्त उपस्थित किये गये थे, उसी राजसभा के सभासद् हमारे चरित्रनायक सुकरात भी थे । कुल सभासद् पांच सौ थे । मतदान द्वारा निर्णय करके उन आठों सरदारों को फांसी

पर लटका दिया गया।

सुकरात ने इस प्राण दण्ड को अनुचित बताया। अपराध का निश्चय तर्क और प्रमाण से होना चाहिये न कि मतदान से। राजसभा ने लोकमत का ध्यान रखा है,न्याय का नहीं। सैनिक मारे तो शत्रु ने और केवल लाशों के लिये आठ अनुपम वीरों का इस संसार से मिटा देना सर्वथा अन्याय अनावश्यक और असंगत है। इन विचारों के साथ राज सभा को छोड़ दिया। इस त्याग मे आज के स्वार्थी सदस्यों को पाठ सीखना चाहिये।

इन पांच सौ सभासदों में से बारी बारी हर एक मेम्बर सभापति बनता था। इस नियम के अनुसार सुकरात भी उस राजसभा

का सभापति बना। जिस दिन वह सभापति था, उस दिन उन सरदारों को दण्डित नहीं होने दिया। कहा कि प्रत्येक अभियुक्त पर अलग अलग मुक़दमा चलना चाहिये। अपराध के अनुसार ही दण्ड मिलना चाहिये। सब को एक लाठी से हांकना ठीक नहीं। इस तरह से खल और खाण्ड का एक ही भाव करना अनुचित है। लोगों ने यह बात सुन कर सुकरात को मृत्यु की धमकी दी। सुकरात मृत्यु से नहीं अन्याय और अत्याचार करने से डरता था। अतः मृत्यु की कुछ चिन्ता न करते हुये अपने सभापतित्व में उन को दण्डित नहीं होने दिया आज के दिन न्यायासन पर बैठने वालों को इस घटना से कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

४-अत्याचारि शासक मण्डली

का विरोध—

ऊपर वाली घटना के कुछ समय बाद वही शत्रु एथैंस पर फिर चढ़ आया, जिस के कारण से पहले आठ सरदारों को फांसी पर लटकाया गया था। अब की बार शत्रु जीत गया। एथैन्स पर उसका अधिकार हो गया। प्रज़ातन्त्र प्रणाली नष्ट हो गई। वहां पर क्रीटीयस नामक एक प्रभावशाली व्यक्ति था। वह पहले सुकरात का साथी रह चुका था। उसने शत्रु के संकेत पर तीस मेम्बरो की एक राजसभा स्थापित की।

उक्त सभा जनता पर मन माने अत्याचार करती थी। अपने विरोधियो को फांसी पर

लटका देती थी। उन का एक विरोधी सलामी नामक व्यक्ति लीयोन नामक स्थान पर रहता था। उस को यह सभा एथैन्स में बुला कर कत्ल करना चाहती थी। उक्त सलामी नामक व्यक्ति को बुलाने के लिये उक्त सभा ने एथैंसवासी पांच नागरिकों को आदेश दिया। उन पांच नागरिकों में सुकरात का नाम भी था। सुकरात ने वहां जाने से इन्कार कर दिया। इन्कार ही नहीं उन की हानिकारक नीति का भी विरोध किया। उन के अमानुषिक तथा पैशाचिक काण्ड की कठोर समालोचना की। जनता को उनके विरुद्ध भड़काने का पूरा २ प्रयत्न किया।

उस शासक पिशाचपार्टी ने सुकरात को दरबार में बुला कर खूब डाँट डपट लगाई।

यदि इस बग़ावत से बाज़ नहीं आओगे तो तुम को अपने जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे । सुकरात ने डट कर कहा कि मौत को तो मैं तिनके समान समझता हूं। इस का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं है। अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनीति आदि के मार्ग पर चलने से डरना अपना कर्त्तव्य समझता हूं । उन को सहना भी महापाप मानता हूं। इस तरह से सुकरात ने अपना आत्मिक बल उन सब पर दिन के प्रकाश की तरह प्रकाशित कर दिया। धर्म से अधर्म, पुण्य से पाप, न्याय से अन्याय तथा सत्याचार से अत्याचार सदा दबता आया है।

सारी दुनिया एक तरफ़ सुकरात की जान अकेली थी । न कोई किला हवेली थी और

न ही कोई चेला चेली थी । मगर फिर भी अविद्या खूब कुचेली थी । धन्य है उस सरल स्वभाव, महानुभाव, सौम्य तथा सुजन सुकरात को कि जिस ने हमारे सामने अन्याय के विरुद्ध लड़ने का अत्युत्तम उदाहरण उपस्थित किया ।

५-विरोधी दल

सुकरात के समय में यूनान में धार्मिक विचार तीन भागों में विभक्त थे ।

(१) पहली प्रकार के लोग वहुदेवतावादी तथा ईश्वरवादी थे । एक ईश्वर और अनेक देवी देवताओं को मानते थे । इस सम्प्रदाय के लोग सभी प्राचीनतावादी थे ।

(२) दूसरे सम्प्रदाय के लोग पुराने सिद्धान्तों

का खण्डन तथा नयी बातों का मण्डन करते थे। लोकरुचि के अनुसार मत उपस्थित करके लोगों को अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न करते थे। पुरानी बातों पर कीचड़ उछालते तथा उनका खुल्लम खुल्ला मखौल करते थे।

(३)तीसरे सम्प्रदाय के लोग प्राकृतिक (कुदरती) नियमों को मानते थे। प्रत्येक बात की व्याख्या युक्ति और अपने विचार के अनुसार करते थे। ये लोग पहले दूसरे दोनों सम्प्रदायों के नियमों का खण्डन तथा मखौल करते थे। दूसरे सम्प्रदाय के लोग सोफियाई कहलाते थे।

सुकरात इन तीनों प्रकार के सम्प्रदायों के विश्वासों का युक्ति, नवीन विचार तथा तर्कप्रणाली के आधार पर खण्डन करता था। अतः तीनों सम्प्रदायों के लोग सुकरात से

चिढ़ने लग गये। उस के विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार से एक काफी प्रबल विरोधी दल सुकरात के विरुद्ध खड़ा हो गया।

उसी समय एक चालाक, लोभप्रिय तथा अवसरवादी व्यक्ति ने जनता के इस विरोध से लाभ उठाने के लिये एक नाटक रच डाला उस चालाक नाटककार का नाम अरिस्टोफेन था। सुकरात को अपने नाटक का पात्र बना दिया। इस सुकरात पात्र के मुख से अरिस्टो-फेन ने वे वे अप्रासंगिक बातें कहलवाईं कि उस नाटक के सभी दर्शक तथा पाठक सुकरात में सब प्रकार के अवगुण तथा दोष देखने लगे। सुकरात धर्मविरोधी, अनीश्वरवादी, देवी देवताओं का घोर विरोधी, महा निर्धन,

साधनहीन, बक्कवासी तथा घोर नास्तिक समझा जाने लगा। उस नाटक में सुकरात को सोफ़ियाई सिद्ध किया गया। इस नाटक ने जले पर नमक का काम किया। और भी लोग विरोधी बन गये। इस भांति सुकरात के विरुद्ध एक प्रबल दल उठ खड़ा हुआ। परन्तु विरोधी उस का क्या बिगाड़ सकते थे। भला हवा के झोंके भी कभी पर्वत को हिला सकते हैं ?

संसार का सदा से यह नियम चला आया है कि जो कोई महापुरुष इसे जगाने आया, इसने उसे ही नीच उपायों द्वारा असमय में ही समाप्त कर दिया। सुकरात एक महापुरुष था। वह संसार को जगाने आया था। अतः संसार के इस पुराने नियम से

वह भी न बच पाया। यूनान के वेसमझ लोगों ने इस अनुपम विशेष विभूति को कैसे समाप्त करके अपने आप को कृतकृत्य तथा सफल समझा इस का वर्णन आगे किया जायेगा।

सुकरात के वहुत लोग साथी भी थे। वे उस के पक्ष को प्रबल समझते थे। सम्भव उपायों से सुकरात की समय समय पर सहायता भी करते थे। उस के लिये आपत्तियां भी उठाते थे। शत्रु, मित्र तो सभी के मिलते हैं। परन्तु सुकरात के मित्र बहुत कम तथा शत्रु अनेक थे। यह देखने में आया है कि जिस का विरोध प्रबल रूप धारण कर लेता है, वह अवश्य ही अपने शुभ उद्देश्य में सफल हो जाया करता है। यही नियम सुकरात के

विषय में सत्य उतरा। अन्त में यूनान ने उस को महर्षि कह कर पूजा। ठीक है, अन्त भले का भला।

६-सुकरात की तर्क प्रणाली

सुकरात की युक्ति तथा तर्क प्रणाली के सामने उस का कोई भी विरोधी खड़ा नहीं रह सकता था। इस समय भी संसार सुकरात की युक्ति, तर्क प्रणाली तथा दार्शनिकता को देख कर हैरान परेशान रह जाता है। उस की तर्क का मूलाधार यही था कि किसी भी बात को तर्क की कसौटी पर कसे बिना सत्य समझ कर मूर्ख मत बनो। जो स्वयं ही अपने आप को समझदार समझता है, उस के मूर्ख होने में कोई सन्देह एवं संशय

नहीं रह जाता। यह कभी मत विचारो कि मैं सब कुछ जानता हूं अपितु सदा यही सोचना उचित है कि मैं कुछ नहीं जानता हूं इसलिये कुछ सीखने का इच्छुक हूँ। जिज्ञासु (जानने का इच्छुक) ही इस संसार में कुछ सीख सकता है। जो पहले ही अपने आप को ज्ञानी समझता है, वह और अधिक सीखने के लिये प्रयत्न नहीं करता है। यह मनुष्य जीवन कुछ सीख कर दोनों लोक सुधारने के लिये ही मिला है। अतः इस दिशा में कोशिश करो। अभिमान तथा अहंकार को त्याग दो। अहंकार वर्षों की कमाई को क्षण भर में ही मिट्टी में मिला देता है। यह मानव जाति का घातक शत्रु है।

लोग मुझे समझदार तथा बुद्धिमान्

समझते हैं। मैं अपने आप को बेसमझ तथा मूर्ख समझता हूं इसीलिए मैं समझदार तथा बुद्धिमान् भी हूं। मै मूर्ख हूं और अपने आप को मूर्ख ही समझता हूं। इसलिये मुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त है और इसीलिये मैं समझदार हूं। जो लोग वास्तव में हैं तो मूर्ख और अपने आप को समझते हैं समझदार, वे मूर्ख और बेसमझ हैं, इस में कोई सन्देह नहीं, मैं वास्तव में हूँ तो मूर्ख परन्तु समझ लूं अपने आप को बुद्धिमान् तो मेरे मूर्ख होने में कोई सन्देह तथा सशंय शेष नहीं रह जाता। अपने आप को समझदार समझ कर अपनी बेसमझी का स्वयं सबूत मत दो। जो समझदार बनता है वह वास्तव में बेसमझ है और जो बेसमझ बनता है, वह वास्तव में समझदार है।

अभियोग

सुकरात एक महा मूर्ख, दुष्ट, धूर्त, चालाक तथा कुलक्षणी व्यक्ति है। सच्चाई तो इस के पड़ौस में भी नहीं रहती। दिन रात कुतर्क करता रहता है। धार्मिक विश्वासों का घोर विरोधी तथा महा शत्रु है। देवी देवताओं का खण्डन करना इस का नित्य का काम है। प्राचीन काल से प्रचलित प्रथाओं के अनुसरण को पाप बतलाता है। ईश्वर का घोर विरोधी तथा महा नास्तिक है। नवयुवकों को बहका कर अपने पीछे लगा लेना इस के बांये हाथ का खेल है। यही हाल यदि कुछ दिन तक और रहा तो यूनान रसातल को पहुँच जायेगा। अतः सुकरात को जल्दी से जल्दी यमलोक का अतिथि बना देने में

ही देश, जाति तथा धर्म का कल्याण है।

सुकरात पर आरोप लग चुका है। इस का निर्णय राज सभा ने करना है। वही न्यायालय है। सुकरात वहां पर पहुंच गया है। अभियोग का निर्णय प्रराम्भ होने में कुछ देर है। वहां बहुत से लोग बाहर खड़े हैं। सुकरात ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने देता अतः लोगों से प्रश्नोत्तर आरम्भ हो जाते हैं। इन प्रश्नोत्तरों से जहां सुकरात का धैर्य, समुद्र सा गाम्भीर्य तथा आकाश सा औदार्य ज्ञात होता है, वहां उस के धार्मिक सिद्धान्त तथा विश्वास भी विदित होते हैं।

सभाभवन में यूथीफाइरन
तथा सुकरात का संवाद

यूथीफाइरन—क्यों भाई सुकरात आज इधर

आप के दर्शन होने का क्या कारण
है। क्या कोई अभियोग मुकदमा है
सुकरात–आज मुझ पर अभियोग नहीं, एथें-
सवासियों ने अपराध लगाया है।
यू०– अपराध ! ओहो ! किस भले आदमी
ने लगाया है ?
सु०– भ्राता जी ! पिथीस जाति के एक
होनहार नौजवान ने लगाया है।
मैं उस को जानता तो नहीं, पर सुना
है कि उस का शुभ नाम मेलीटस है।
यू०– भाई साहब ! क्या इलज़ाम लगाया
है ?
सु०– यही कि मैं नौजवानों को बहका कर
बिगाड़ता हूं। उन को घोर नास्तिक
बनाता हूं।

सू०— मेरे विचार में यह मेलीटस की बड़ी भारी भूल है। यदि सरकार मेली-टस की बात पर विश्वास करेगी तो समझो कि उस के नाश के बीज भी बोये गये। वह क्या जुर्म लगाता है ?

सु०— भ्राता जी! वह यही जुर्म लगाता है कि मैं एक नया सम्प्रदाय चलाना चाहता हूं। इस के नये नियमों द्वारा लोगों के दिमागों को खराब करता हूं।

यू०— कोई चिन्ता मत करो। इस अभियोग में तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मेरे वचन को निःसंकोच भाव से सत्य समझ लो।

सु०— प्रिय मित्रवर्य! आप का क्या मुकद्मा

है ? आप वादी (मद्दई) हैं या प्रति-
वादी (मुद्दायला) ?

यू०— भाई जी ! मैं वादी हूँ।

सु०— आपने किस पर, क्या और क्यों
मुक़द्दमा किया है ?

यू०— श्रीमन् ! मेरे पड़ौसी के खेत में एक
रखवाला रहता था। उसने हमारे
नौकर को मार डाला। मेरे पिता ने
उस रखवाले को बान्ध कर एक
गढ़े में पटक दिया। लोगों से सम्मति
लेता रहा कि क्या करना उचित है।
इस बीच में वह रखवाला सर्दी के
कारण से ठिठर कर मर गया। मैं
अपने पिता को खूनी समझ कर उस
पर क़त्ल का मुक़द्दमा दायर करने

के लिये यहां आया हूँ। चाहे मरने वाला हमारा आदमी नहीं, परन्तु मारने वाला तो हमारा है । किसी को मारना पाप है। पापी को उस के पाप का दण्ड दिलाना पुण्य है। इस लिये बाप पर मुकदमा चलाना पुण्य का कार्य समझता हूँ।

सु०— हो सकता है कि तुम ऐसा करने में अधर्म कर रहो । क्या तुम धर्म अधर्म और न्याय अन्याय को यथार्थ रूप में समझते हो?

यू०— वाह भाई साहब ! आपने खूब कही। यदि मै इतना भी नहीं समझता तो यहां क्यों आता?

सु०— तो फिर यह बतलाइये कि पाप

पुण्य किसे कहते हैं ?

सू०— अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना पाप है और उसे यथायोग्य दण्ड दे देना पुण्य है, फिर अपराधी चाहे बाप हो चाहे मां। मेरे जैसी बात कई देवताओं ने भी की है। लोग उन देवताओं की बातों को तो ठीक मानते हैं, परन्तु मेरी बात को ठीक नहीं मानते। इसीलिए मुझे लोगों पर क्रोध आता है।

सु०— भगवन्! यही अवस्था मेरी है। लोग देवताओं के विषय में अनाप-शनाप बातें कहते हैं। मुझे वे अच्छी नहीं लगतीं। इसीलिये लोग मुझ पर जुर्म लगाते हैं, मुझे पापी समझते

हैं। आप देवताओं के विषय में तो बहुत कुछ जानते हैं। परन्तु अभी तक आप ने धर्म या पुण्य का मर्म और रहस्य नहीं बतलाया, जिसे सुन कर मेरे हृदय को सन्तोष होता।

सू०— जिन कर्मों से देवता सन्तुष्ट होते हैं, वे धर्म तथा पुण्य हैं और जिन कर्मों या चेष्टाओं से वे रुष्ट होते हैं, वे अधर्म तथा पाप हैं।

सु०— कुछ देवता एक बात से सन्तुष्ट होते हैं, और कुछ उसी बात से रुष्ट भी हो जाते हैं। इस हिसाब से किन देवताओं की बात को प्रमाण माना जाये? तुष्ट (प्रसन्न) और रुष्ट (नाराज) देवता आपस में लड़ाई

झगड़ा भी कर बैठते होंगे।

सू०— जी हां! लड़ाई झगड़ा तो हो ही जाता है।

सु०— यदि लड़ाई झगड़ा छोटी बड़ी संख्या के विषय में होता तो गिन कर निर्णय कर लेते। यदि लम्बाई चौड़ाई के विषय में होता तो नाप कर निर्णय कर लेते। यदि झगड़ा कम ज्यादा बोझ के कारण हो जाता तो तोल कर फैसला हो जाता। फिर वे देवता लड़ते क्यों हैं। इस प्रकार से निर्णय क्यों नहीं कर लेते?

सु०— देवताओं की अनबन के विषय तो— अच्छा बुरा, घटिया बढ़िया, ठीक बे ठीक, ऊंच नीच, सत्य असत्य, ज्ञान

अज्ञान आदि हैं।

सु०— तो मतलब यह है कि देवताओं का इन ऊपर वाली बातों में मतभेद रहता है।

सू०— जी हां।

सु०— तो एक ही बात को कुछ देवता उचित समझते हैं और कुछ अनुचित उचित समझने वालों की दृष्टि में वह बात धर्म तथा पुण्य है और अनुचित समझने वालों की दृष्टि में वही बात अधर्म तथा पाप है। इस हिसाब से देवताओं की दृष्टि में एक ही बात या वस्तु पाप भी है। और पुण्य भी, पवित्र भी है और अपवित्र भी। यही बात है न ?

सू०—हां, बात तो कुछ इसी तरह की बन गयी है ।

सु०—भाई साहब ! मैंने आप से यह तो नहीं पूछा था कि कौन सी बात या वस्तु एक ही साथ पाप और पुण्य है या पवित्र और अपवित्र है । मैंने तो धर्म का रहस्य पूछा था। इसी बिना पर तुम्हारा अपने पिता पर मुकद्मा करना भी पाप और पुण्य दोनों हो सकता है, फिर इसे पुण्य क्यों समझ बैठे हो ?

सू०—मैं तो अपराधी को दण्ड देना धर्म समझता हूँ।

सु०—अपराधी कहता है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया । मेरे साथ अन्याय किया जा

रहा है। फिर तुम उसे पुण्य कैसे समझ सकते हो?

यू०—अपराधी तो दण्ड से बचने के लिये अनेक तरह की झूठ बोलता और सब कुछ करने को तैयार रहता है।

सु०—भाई मेरे! अपराधी चाहे जो कुछ कहे, परन्तु अपराध को स्वीकार कर के दण्ड से बचना नहीं चाहता। कोई मनुष्य यह नहीं कहता कि—मैं अपराधी हूँ, इस लिये मुझे दण्ड न दिया जाये—हर कोई यही कहता है कि—मैं अपराधी नहीं हूं, इसलिये मुझे दंड न दिया जाये। अपराध स्वीकार करके कोई दंड लेने से मुकरता नहीं देखा। फिर आप

कैसे कहते हैं कि अपराधी सब प्रकार की झूठ बोलने को तैयार रहता है। क्या अपराध स्वीकार कर के उसके दंड से बचने के लिये भी कोई झूठ बोलता देखा है ? यदि नहीं तो फिर ऐसा क्यों कहते हो ?

ऊपर हुई बातचीत के अनुसार, तुम्हारा, पिता पर खून का मुक़द्मा करना,—सब देवताओं को पसन्द नहीं हो सकता। इसलिये यह सर्वथा धर्मानुकूल नहीं हो सकता। फिर धर्म किसे मानते हो ?

यू०—अरे भाई ! तुम ने तो मेरे कान खा लिये। लो, मैं धर्म का अन्तिम लक्षण

कर देता हूं, जिस पर तुम कोई आक्षेप नहीं कर सकोगे।

सु०—वाह वा! फिर तो मैं आप को अपना पूज्य गुरु मान लूंगा। कहिये वह धर्म का कौन सा लक्षण है?

यू०—लो कान लगा कर ध्यान धर कर सुनो। तुम को धर्म का रहस्य बता ही देता हूँ। जिस बात को सब देवता पसन्द करते हैं, वह धर्म है। और जिसको सब देवता नापसन्द करते हैं वह अधर्म है। यही धर्म का अकाट्य लक्षण तथा सच्चा रहस्य है। क्यों मानते हो कि नहीं?

सु०—अच्छा यह बतलाइये कि कोई बात धर्म होने से देवताओं को पसन्द आती है या पसन्द आने से वह बात धर्म का

रूप धारण कर लेती है। धर्म होने से पसन्द है या पसन्द होने से धर्म है ?

घू०—मेरे विचार में तो कोई बात पवित्र है, धर्म है, इसी लिये उसे देवता लोग पसन्द करते हैं

सु०—तो देवता किसी वस्तु को पवित्र और धर्म समझ कर ही पसन्द करते हैं। यह बात तो नहीं हुई कि देवताओं के पसन्द करने से कोई बात पवित्र या धर्म बन जाये।

घू०—जी हां, दीखता तो कुछ ऐसा ही है।

सु०—मित्रवर्य ! आप ने ऊपर धर्म का अकाट्य लक्षण तो सही किया है कि—जिस बात को सब देवता पसन्द करते हैं, वह

धर्म है। अभी आप ने यह माना है कि देवताओं की पसन्द से कोई बात या वस्तु धर्म नहीं बनती। फिर धर्म का लक्षण तो कोई और ही हुआ न ? सो बतलाइये क्या है ?

मू०—अब मैं क्या बताऊं। जिस लक्षण को मैं अकाट्य (न कटने वाला) समझता था, उस की धज्जियां तो आप ने बात की बात में उड़ा दीं। मेरे हृदय में तो बहुत कुछ है, परन्तु कहते नहीं बनता। आप के सामने मेरी कोई भी युक्ति नहीं ठहरती फिर मैं क्या करूं ? मेरे विचार में यह दोष तो आप का ही है कि मेरी किसी भी बात को टिकने नहीं देते। भाई साहब ! आप में श्रद्धा और प्रीति

का अभाव है क्योंकि आप को भय तो किसी का है नहीं । कहा है कि भय बिन प्रीत नहीं । श्रद्धा और प्रीति के बिना आप मेरी बहुमूल्य बातों को भी नहीं समझ पा रहे । समझ लेते तो झगड़ा ही समाप्त था ।

सु०—यह आपने क्या कहा कि भय बिन प्रीत नहीं । भय के बिना श्रद्धा और प्रीति नहीं होती । भाई साहब मैं आप से पूछता हूं कि लोग बीमारी और रोगों से बहुत डरते हैं । क्या उनकी उन में श्रद्धा हो जाती है । शेर, भेड़िया, सांप, बिच्छू आदि प्राणियों से सब कोई डरता है । क्या लोगों कि इन में प्रीति

328

है ? श्रद्धा और प्रीति तो गुणों के कारण होती है, भय के कारण नहीं। आप तो मुझे डरा धमका कर मनाना चाहते हैं। और धर्म और पुण्य से गुण बतायें, मैं स्वयं ही स्वीकार कर लूंगा। मुझ पर भय का नहीं गुणों का प्रभाव पड़ता है जहां भय होगा वहां श्रद्धा का होना आवश्यक नहीं, हां जहां श्रद्धा होगी वहां भय हो सकता है। हम अपने पूज्य जनों में श्रद्धा रखते हैं। उन के सामने बुरी चेष्टा करने में हमें भय लगता है।

धू०—देवताओं की खबरदारी रखना ही धर्म तथा पुण्य है। इस से आगे धर्म या

धर्म का कोई रहस्य या मर्म नहीं है। यह तो तुम्हें विवश होकर मानना ही पड़ेगा।

सु०—जिस की खबरदारी रखी जाती है, उसकी उन्नति होती है, उस को सुख मिलता है। जैसे अश्वपालक (साईस) घोड़े की खबरदारी रखता है तो उस से घोड़ा सुखी रहता है और उस की उन्नति भी होती है। गडरिया अपने पशुओं की खबरदारी रखता है तो उस के पशु सुखी तथा उन्नत होते हैं। शिकारी अपने कुत्तों की, मदारी अपने रीछों या बन्दरों की खबरदारी रखता है तो कुत्ते, रीछ और बन्दर सुखी तथा उन्नत होते हैं। ठीक इसी प्रकार

मनुष्यों की खबरदारी से देवता लोग भी सुखी तथा उन्नत होंगे। यदि खबरदारी का यही मतलब है तो देवता लोग मनुष्यों के अधीन ठहरते हैं। यदि मनुष्य उनकी खबरदारी न रखें तो वे दुखी अवनत (पतित) हो जायेंगे। दुखी और गिरे हुये कभी देवता नहीं बन सकते। यदि कहो कि देवताओं पर खबरदारी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो प्रभावहीन चेष्टा को धर्म या पुण्य कैसे मान लें ?

पू०—देवताओं को प्रसन्न करने की कला (हुनर) को धर्म या पुण्य मानता हूँ।

सु०—बहुत अच्छा। एक वैद्य की कला (हुनर) का परिणाम लोगों की सेहत

की तरक्की है। वैद्य की कला से सेहत बनती है। पोतनिर्माण की कला से जलयान बन जाता है। राज मिस्तरी की कला से मकान बन जाता है। चमार की कला से जूता बन जाता है। लोहार की कला से हथियार बन जाते हैं। किसान की कला से अन्न पैदा होता है। ठीक इसी प्रकार से देवताओं को प्रसन्न करने की कला से क्या बनता या पैदा होता है?

पू०-भाई जान! देवताओं को प्रसन्न करने की कला से अनेक श्रेष्ठ तथा उत्तम फल उत्पन्न होते हैं अर्थात् निकलते हैं।

सु०—सेनापति सेना का संचालन करता है, इसके कई परिणाम निकलते हैं। परन्तु सब से उत्तम और श्रेष्ठ परिणाम 'जीत' है। किसान खेती बाड़ी करता है। इस के भी कई परिणाम निकलते हैं। परन्तु सब से श्रेष्ठ तथा उत्तम परिणाम अन्न की उत्पत्ति है। गुरु शिष्य को विद्यादान देता है तो कई परिणाम निकलते हैं। परन्तु मुख्य परिणाम शिष्य का विद्वान् होना है। ठीक इसी प्रकार से देवताओं को प्रसन्न करने से जो अनेक उत्तम तथा श्रेष्ठ परिणाम निकलते हैं, उन में सब से मुख्य या प्रधान परिणाम कौनसा निकलता है?

यू०—देवताओं के प्रसन्न होने से लोगों की

आपत्ति तथा विपत्ति टल जाती हैं। यदि देवता अप्रसन्न हों तो लोग अनेक प्रकार के दुःख उठाते हैं।

सु०—प्रिय मित्रवर्य! आप देवताओं को प्रसन्न कैसे करते हैं?

यू०—सेवा से

सु०—सेवा का क्या अर्थ है?

यू०—यज्ञ।

सु०—यज्ञ से आप का क्या अभिप्राय है?

यू०—यज्ञ का मतलब देवताओं को कुछ भेंट करना तथा उन से प्रार्थना रूप में कुछ मांगना।

सु०—तो आप की बात का यही तात्पर्य है कि देवताओं को कुछ देने तथा उनसे कुछ मांगने की विधि को ही धर्म या पुण्य कहते हैं।

यू०—हां, हां, यही बात है। यार मेरा मगज चाट लिया यह साधी सादी सी बात भी बड़ी कठिनाई से तुम्हारी समझ में आयी है।

सु०—जब आप सरीके दार्शनिक समझाने वाले हैं तो फिर समझ में कैसे न आती। देर हो गयी तो कोई बात नहीं, अन्धेर तो नहीं रहा। अस्तु। भगवन्! यह बतलाइये कि आप देवताओं को भेंट क्या करते हैं?

यू०—हम देवताओं को वही वस्तु भेंट करते हैं, जिसकी उनको आवश्यकता हो और जो इनको बहुत पसन्द हो।

सु०—आप देवताओं से मांगते क्या हैं?

यू०—हम देवताओं से वही वस्तु मांगते हैं,

जिसकी हमें आवश्यकता हो और जो हम को बहुत पसन्द हो।

सु०—हम आप के कथन का मतलब यही समझे कि मनुष्य और देवताओं के बीच में होने वाला लेन देन ही धर्म या पुण्य है। भला यह तो बताओ कि आप देवताओं को भेंट क्या करते हैं ?

यू०—श्रद्धा और भक्ति।

सु०—देवताओं के पास श्रद्धा और भक्ति की काफी कमी होगी। तभी वे लोग इन को हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं ?

यू०—भाई सुकरात ! मैं तुम्हारी समझ से तंग आ चुका हूं। अब मेरा पीछा छोड़ो। श्रद्धा तथा भक्ति की देवताओं के पास कमी नहीं है। वे तो इन दोनों

को प्रिय तथा पवित्र समझ कर ग्रहण करते हैं। भाई कुछ समझ में, पड़ा कुछ पल्ले। ?

सु०—हां पल्ले तो काफी पड़ा है। आपने आरम्भ में कहा था कि जो वस्तु या बात देवताओं को प्रिय या पवित्र जंचे, वही धर्म या पुण्य है। वही बात इतने हेर फेर के बाद फिर दोहरा दी है। परिणाम कुछ भी नहीं निकला। मेरी बड़ी इच्छा थी कि आप मुझे धर्माधर्म का मर्म तथा रहस्य समझा देते ताकि अभियोग के निर्णय के समय कुछ युक्ति युक्त बोल पाता।

यु०—अब मुझे यहां खड़े बहुत देर हो गयी है। इस लिये अब चलना चाहिये

क्योंकि अपने पिता पर कतल का मुकद्दमा दायर करना है। आप बहुत युक्तियां लगाते हैं। अतः आप ही धर्म का रहस्य बतलाने की कृपा करें।

सु०—मेरे विचार में आप को अपने पिता पर कतल का मुकद्दमा दायर नहीं करना चाहिए। शेष रही बात धर्म के विषय में। सो मैं तो यही समझता हूँ कि सर्वहितकारी नियमों ही का नाम धर्म है धर्म का मर्म या रहस्य यही है कि इसके सर्वहितकारी नियम समय के अनुसार बदलते रहते हैं।

यू०—क्या प्रकृति के नियम (कानूने कुदरत) बदलते रहते हैं ?

सु०—प्रकृति के नियम तो परिवर्तनशील नहीं, सदा एक रस रहने वाले हैं। इन को प्राकृतिक धर्म कहते हैं, मानव धर्म नहीं। मानव-धर्म परिवर्तनशील है यह परिस्थिति तथा देश काल के अनुसार बदलता रहता है।

सुकरात का दोष-मोचन (सफाई)

सभा भवन में सब लोग उपस्थित हैं। सुकरात भी इन्हीं में विद्यमान है। जब तक अभियोग की कार्यवाही आरम्भ नहीं होती तब तक सुकरात अपना कर्त्तव्य पालन करता है उसका मुख्य कर्त्तव्य लोकालोचन था। लोगों की समालोचना करते करते उसका जीवन व्यतीत हो चुका है। आज उसकी आयु सत्तर वर्ष के लगभग है। सिर पर प्राण घातक

दोषारोपण होने वाला है। सुकरात को इस की कोई चिन्ता नहीं है। वह तो अन्तिम सांस तक अपने धर्म पर डटा रहना चाहता है। इसे कहते हैं कर्त्तव्य पालन में तत्परता। इन बातों से पता चलता है कि सुकरात हिमालय से भी धीर, समुद्र से भी गम्भीर तथा आकाश से भी उदार था।

सुकरात पर विरोधी लोगों ने, जिनका नेता मिलटिस है, दोषारोपण कर दिया है। वही दोष जो पीछे कहा जा चुका है। विरोधी लोगों ने दोष लगाते समय बड़े बड़े व्याख्यान दिये थे। पुस्तक का कलेवर बढने के भय से उन का यहां निरूपण नहीं किया जा रहा। न्यायालय ने सुकरात को आत्म-दोष-मोचन अर्थात् अपनी सफाई पेश करने का अवसर

दिया । सुकरात अपनी सफाई पेश करते हुए यों कहते हैं—

आत्म-दोष-मोचनार्थ वक्तृता

हे एथेंसवासी उपस्थित भाइयो ! अभियोक्ताओं ने बना ठना कर आप लोगों के सामने बहुत कुछ कहा है। मुझे यह मालूम नहीं कि इन बड़े बड़े जोरदार व्याख्यानों का आप पर क्या प्रभाव पड़ा है। मैं तो इन की इस व्याख्यान कला को देख कर आश्चर्य में डूब गया हूं। बात करने में आज तक कहीं इतनी और इस प्रकार की धूर्तता नहीं देखी थी। मैं हैरान हूं कि हमारी नगरी में ऐसे ऐसे कलाकार वर्तमान हैं। फिर भी हम आपस में क्यों झगड़ते हैं। मैं तो यही समझता हूँ कि

इस व्याख्यान कला का दुरुपयोग किया जा रहा है। अस्तु। इन बातों से आप लोग यह अनुमान करने की भूल न करें कि जो कुछ मेरे विरुद्ध कहा गया है, वह सच है। इन लोगों ने झूठ के बादल बान्ध दिये हैं। परन्तु झूठ के पैर कहां! वह लड़खड़ा जायेगी।

मुझे इन निर्लज्ज धूर्तों की यह बात सुन कर महान् आश्चर्य हुआ है कि—लोगो! सुकरात बहुत दुष्ट व्यक्ति है। बातें बना कर लोगों को बहका लेना इसके बायें हाथ का खेल है। भाइयो! यह लोग जीवन की व्याख्या को बहकाना ही समझते हैं। बलिहारी हूँ इन की बुद्धि पर। लोगों को बहका कर मैं क्या लाभ उठाना चाहता हूं? मैं कोई व्यापारी या सूदखोर नहीं हूँ। मैं सोचता विचारता हूं।

ध्यान लगाता और मनन करता हूं। इसके बाद मुझे जो सचाई ज्ञात होती है, उसे निज की सम्पत्ति न समझ कर सब में निर्भीक हो कर बांट देता हूँ। इस लिये मैं सच्चा दाता तथा सत्यवक्ता हूं।

मेरे विरोधियों ने क़सम खाई है कि सिर से पैर तक झूठ ही बोलना है। मैंने सदा सत्यवादन (सच बोलने) का व्रत धारण किया है यदि मैं झूठ बोलता और लोगों को बहका कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता तो आज यह नौबत न पहुंचती। यदि संसार दुष्ट को दुष्ट और श्रेष्ठ को श्रेष्ठ कहने और मानने लग जाये तो सारे झगड़े समाप्त हो जायें और दुनियां आराम से रहे। झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिये इस संसार में बहुत मसाला

है। सत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये यहां बहुत कम मसाला है। सच्चे के पास तो सब से बड़ी युक्ति यही है कि वह कह दे कि मैं सत्यवादी हूँ। तो यह युक्ति तो मैं भी दे रहा हूँ।

मैं सत्तर साल का हो गया हूं। आज तक मैंने झूठ नहीं बोला तो अब इस अवस्था में पहुँच कर मुझे इस की क्या खास जरूरत पड़ गयी। मैंने झूठ बोल कर लोगों से कौनसा लाभ उठाया। मेरे बोलने के ढंग को भी देखो। फिर आप को झूठे सच्चे का आप ही पता लग जायेगा। जनता को सन्मार्ग दिखाना और सत्य ज्ञान द्वारा उनका अन्धकार मिटाना परम धर्म है। इस का पालन करके

मुझे पछताना नहीं पड़ रहा। मैं ऐसा करने के लिये बड़े से बड़े संकट को सहने के लिये सज्जित (तैयार) हूं। पाप और बुराई तो लोगों को कूपमण्डूक (कुएं का मैण्डक) बनाने में है लोगों को अन्धेरे में रख कर अपना उल्लू सीधा करना पाप है। इसी के लिए ये विरोधी लोग झूठ तूफान बोल रहे हैं। स्वार्थी दोष को नहीं समझ सकता क्योंकि स्वार्थवश अन्धा हो जाता है। ये लोग अन्धे हो चुके हैं। अतः इन की बात को प्रमाण मानना बुद्धि का अपमान करना है।

अभियोक्ता लोग बड़े परिश्रम से अपने व्याख्यान तैयार कर के लाये हैं। मैं बिना तैयारी के बोल रहा हूं। सच्ची बात कहने के लिये तैयारी की जरूरत नहीं होती जा

कुछ सत्य प्रतीत होता है। उसे कह डालता हूँ। सत्यवादी को अगला पिछला प्रसंग याद रखने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। झूठे को कदम कदम पर प्रकरण का ध्यान रखना पड़ता है।

आज से पहले मुझे अपराधी के रूप में न्यायालय में कभी नहीं बोलना पड़ा। यह पहला ही अवसर है। मैं यहां के रीति रिवाज को नहीं जानता। अतः अनजाने में कोई भूल या त्रुटि हो जाये या रह जाये तो आप लोग क्षमा करके अपनी उदारता का प्रमाण के देने की महती कृपा करेंगे। शायद मेरे बोलने ढंग में अनेक दोष हों। मेरी बोलने की विधी भी शायद आपको पसन्द न हो। परन्तु मुझे इतना दृढ़ विश्वास है कि मैं जो कुछ कहता

हूं, वह सर्वथा सत्य है। आप को मेरी बातें सुनते समय केवल इसी बात पर ध्यान देना योग्य है कि मैं जो कुछ कहता हूं, वह सत्य है या मिथ्या (झूठ)।

भाइयो ! नये और पुराने विचार रखने वाले दोनों ही प्रकार के लोग मुझ पर दोष लगाते हैं पुराने विचार वाले लोग इस विषय में बहुत उग्र (तेज) दीखते हैं। वे पचासों वर्ष से मेरे पीछे लगे हुए हैं। जिस समय वे आप लोगों को मेरे विरुद्ध कुछ कहते हैं, उस समय मैं वहां मौजूद नहीं होता हूं। अतः जो कुछ कहते रहते हैं, वह आप सज्जनों के दिल में जम चुका होगा। उस का एक दम निकाल देना कुछ कठिन सा ही प्रतीत हो रहा है। इस लिए मैं इन पुराने लोगों से

अधिक भय खाता हूँ। भाइयो ! मैं अपने मन की बात आप तक कैसे पहुँचाऊं। मेरे पास कोई साधन नहीं। मैं निर्बल तथा निःसाधन हूँ।

सच बात तो यह है कि मैं तो अपने इन विरोधी सज्जनों से परिचित भी नहीं हूं। इन विरोधी महानुभावों में कुछ तो कवि हैं। वे अपने आपको कवि समझ कर अपनी वे समझी का काफी मजबूत सबूत दे रहे हैं। मैं उन को कवि नहीं भाण्ड भण्डौवे ही समझता हूं, क्यों कि वे हर स्थान पर मेरी नक़ल उतारते हैं। नक़ल उतारने की उनकी विधी सभ्यता से दूर की चीज है। नकल उतारते समय नीचता की सीमा को लांघ जाते हैं। अतः वे भड़वे कवि हैं। कई लोग अपने

अज्ञानवश ऐसा कर रहे हैं। दूसरे ईर्ष्या द्वेष के कारण ऐसा कर रहे हैं। कुछ सज्जन बहकावट में आकर ऐसा कर रहे हैं। कुछ भोले भाई ऐसे भी हैं, जिन को मेरे बुरे होने का पूर्ण विश्वास है। इसके अतिरिक्त कुछ पिछलगवे धूर्त और तमाशबीन भी हैं। सो ऐसे लोगों की कोई भी बात प्रमाण नहीं माननी चाहिए। इन की बात को प्रमाण मानना सभ्यता को तिलांजलि देना तथा शिष्टाचार को दूर से नमस्कार करना है।

इन धर्म विरोधी लोगों ने तरह तरह की बातें बना कर आप लोगों का मन मुझ से हटा दिया है। इसका समाधान करना बहुत कठिन है। हां इतना मुझे विश्वास है कि आप का और मेरा कल्याण इसी में है कि

आप इन धूर्तों की बातों में न आयें। मेरा सहायक तो भगवान् ही है। उस की आज्ञा को मैं सिर माथे पर धारण करने को हर समय तैयार रहता हूं। वह जो कुछ करता है, सो ठीक करता है। उस पर मुझे लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।

एक बार इन विरोधियों ने मेरा जलूस निकाला। एक व्यक्ति को एक टोकरे में डाल कर सिर पर उठा लिया। जलूस में से कुछ लोग पूछते थे कि तुम कौन हो ? टोकरे वाला मनुष्य कहता था कि मैं सुकरात हूं। लोग पूछते थे। तुम ऐसे क्यों रहते हो ? वह उत्तर देता था कि मैं लोगों के सिर पर पैर रख कर रहता हूं। आकाश में उड़ता फिरता हूं। ईश्वर और देवी देवताओं को वश में करके

अपना काम करवाता हूँ। लोगों को बहका कर नास्तिक बनाता हूं।। नवयुवकों को बिगाड़ने में विशेष रुचि रखता हूँ इत्यादि न जाने क्या क्या ऊट पटांग बकवास बकता था।

हे एथेंस वासी भाइयो ! क्या आपने मुझे कभी ऐसा कहते या करते देखा। आप में से कोई बता सकता है। मैंने कभी किया ही नहीं फिर कोई कैसे बता सकता है। इसी से अनुमान करलो कि ये सब मन घड़न्त किस्से कहानियां हैं। आप का काम तो हंस की तरह दूध पानी अलग अलग छान देना है। सो छानिये।

राजसभा के सभासद् सुकरात से कहते हैं कि तुम्हारी इतनी शिकायतें क्यों आती हैं।

यदि तुम भले आदमी हो तो सब की भलाई करते होगे। अपनी भलाई से सब कोई प्रसन्न होता है। प्रसन्न होने पर मनुष्य शिकायत नहीं गुणगान् किया करते हैं। तुम्हारी जोर दार शिकायत आ रही हैं। तुम कोई न कोई विलक्षण तथा विचित्र कार्य अवश्य करते होगे। हो सकता है कि तुम कोई बहुत अच्छा कार्य करते हो, परन्तु जन साधारण उस के गूढ़ तत्व को न समझते हों। इसी लिये वे वे समझी के कारण से शिकायत करते हों। यह सम्भव नहीं कि तुम कुछ भी न करते हो। अच्छा हो चाहे बुरा हो कुछ न कुछ कारण अवश्य है। बिना कारण के कार्य नहीं होता।

सुकरात—भाइयो! आप लोगों के मन में इस प्रकार के प्रश्नों का उठना तो स्वाभा-

विक ही है। मेरी बात को गम्भीर हो कर सुनने की आवश्यकता है। क्योंकि मैं हंसी मखौल नहीं कर रहा हूँ। यह सारा रोना मेरी बुद्धिमत्ता का है। लोग तो बुद्धि के बल से कई ऐसे कार्य सिद्ध कर लेते हैं, जो शारीरिक बल से सिद्ध होने असम्भव थे। परन्तु मैं बुद्धि के कारण से कलंकित हो रहा हूँ। अस्तु इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं वह बुद्धि रखता हूँ, जिसके कारण से मनुष्य वास्तव में मनुष्य बन जाता है। जब मेरे अन्दर वास्तविक बुद्धि है तो मेरे बुद्धिमान् होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। उनके पास ऐसी बुद्धि है नहीं। यदि है तो वे उसे प्रकट नहीं कर पाये हैं। इस लिये होते हुये भी न के बराबर है। यही कारण है कि वे मेरी निन्दा तथा शिका-

यत करते हैं, और कोई कारण नहीं है।

हे एथैंसवासियो ! मेरी बात सुन कर कुछ अहंकार सा प्रतीत होता होगा। आप मुझे अहंकारी तथा घमण्डी मत समझें। इस समय मैं विरोधियों की भाषा में बोल रहा हूं। प्रसंग वश तथा परिस्थिति के कारण ही ऐसा बोल रहा हूँ। अतः इस विवशता के लिये मुझे क्षमा करके अपने उदार होने का परिचय दें।

डैलफी स्थान वासी प्रसिद्ध विद्वान चेरीफोन को तो सब लोग जानते हैं। वह जवानी भर मेरा साथी रहा है। यदि मुझ में कोई दोष होता तो वह सहन नहीं कर सकता था। उसने डैलफी के प्रधान पुजारी से यह प्रश्न किया था कि—सुकरात से अधिक कोई बुद्धिमान् है या नहीं? पुजारी ने निःसंकोच भाव

से झट कह दिया कि सुकरात से अधिक और कोई बुद्धिमान् नहीं है। यदि मैं नास्तिक और मूर्ख होता तो प्रधान पुजारी मेरे विषय में ऐसे वचन उच्चारण नहीं कर सकता था। चेरीफोन तो इस समय इस संसार में नहीं है। उनका भाई यहां उपस्थित है। वह मेरी गवाही देगा।

जब मैंने यह ऊपर वाली देववाणी सुनी कि—सुकरात सब से अधिक बुद्धिमान् है—तब मैं बहुत हैरान तथा परेशान हुआ। मैं यह समझता था कि मुझ सा मूर्ख शायद ही कोई हो। देवता मुझे बुद्धिमान् बतलाते हैं। देववाणी गलत नहीं हो सकती। इन विचारों के कारण से मैं डूबूं तरूं की अवस्था में गोते खाने लगा। मैंने अपने से अधिक बुद्धिमान् मनुष्य की खोज शुरू कर दी। मैंने सोचा था

कि बुद्धिमान् मनुष्य के मिलने पर मैं घोषित कर दूंगा कि अमुक मनुष्य मुझ से अधिक बुद्धिमान् है। इसी खोज में मेरे बहुत शत्रु बन गये।

एक मनुष्य बहुत बुद्धिमान् प्रसिद्ध था। उस के अनेक श्रद्धालु शिष्य थे। वे सब के सब उसे बुद्धिमान् समझते थे। वह व्यक्ति स्वयं भी अपने आप को बुद्धिमान् समझता था। मैंने उसके साथ बात चीत आरम्भ की तो मालूम हुआ कि वह मूर्ख है। मुझ से वाद, विवाद करने में पीछे हट गया। मैंने जैसा अनुभव किया वैसा उस को बता दिया कि वह बुद्धिमान् नहीं है। फिर क्या था। सब के सब मेरे विरोधी बन गये।

फिर मैं उस से भी अधिक बुद्धिमान्

मनुष्य के पास गया। तर्क वितर्क होने पर वह भी मूर्ख सिद्ध हुआ। वहां भी बहुत से लोग मेरे शत्रु हो गये। इसी प्रकार तीसरे, चौथे पांचवें आदि अनेक बुद्धिमानों के पास गया। सब स्थानों पर मेरे अनेक शत्रु बन गये। मुझे इस परिणाम से काफी दुःख हुआ। चिन्ता भी खड़ी हो गयी कि अब क्या किया जाये। मेरे विषय में जो देववाणी हुई थी कि सुकरात ही सब से अधिक बुद्धिमान् है उस की जांच पड़ताल करनी जरूरी थी! जो भी कोई बुद्धिमान् सुनने आया मै अनेक कष्ट उठा कर भी उसके पास पहुँचा जो जितना अधिक बुद्धिमान् सुनने में आया जांच करने पर वह उतना बुद्ध सिद्ध हुआ।

एथेंसवासी भाइयो! आप जानते हैं कि

यात्रा में कितने कष्ट होते हैं। फिर मेरे जैसे साधन हीन मनुष्य के कष्टों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। मैंने घोर परिश्रम किया, महान् कष्ट उठाये कि कहीं तो मुझ से ज्यादा बुद्धिमान् मिले, पर मिला न मिला। कितना ही सिर पटका, माथापच्ची की मगर सब वे-सूद—व्यर्थ। बड़े बड़े गायनाचार्यों के पास गया। जगत प्रसिद्ध कवियों के समीप गया। नाटक लेखकों के पास गया। बड़े बड़े नीति जानने वाले सरकारी अफसरों के पास गया। भाइयो! मैंने जमाना छान मारा कि कहीं कोई तो मुझ से अधिक बुद्धिमान् हाथ आयेगा, मगर, नहीं नतीजा सिफर था।

मैंने बड़े चाव के साथ कवि लोगों से उन की कविता के बारे में बात चीत की। वे

बड़ा घमण्ड करते थे। समझते थे कि सारा संसार उन के पेट में ही उपस्थित है, मौजूद है। मैंने उन की कवितायें देखीं तो आइयो ! क्या कहूँ, कहते हुए मुझे बहुत शर्म आती है, पर कहे बिना भी रहा नहीं जाता। भेड़ चराने वाला गडरिया भी उन से अच्छी बातें कह सकता है। टट्टी उठाने वाले भंगी से बात चीत करो तो कुछ अधिक मिल सकता है, परन्तु उन कवीश्वरों के साथ बात चीत करने में कुछ भी तो पल्ले नहीं पड़ता। उन कवियों को तो कौवी या कौवा कहा जाये तो ठीक है। इसी तरह के क़िस्से दूसरे लोगों के साथ हुये नतीजा यह कि मैं ही सब से अधिक बुद्धि-मान् ठहरा।

फिर मैंने सोचा कि मैं किसी प्रकार की दस्तकारी नहीं जानता। यदि मैं दस्तकारों के पास जाऊं तो शायद वहां कोई न कोई मुझ से अधिक बुद्धिमान् मिल जाये। नतीजा क्या निकला— वही ढाक के तीन पात, वही तीन काणे। वे लोग कारीगरी की कई बातें ऐसी जानते हैं, जो मुझे नहीं आतीं। मगर इन कारीगरी की बातों के कारण से उन को इतना घमन्ड हो गया है कि उस घमण्ड के मारे जमीन पर पैर नहीं धरते, आकाश में उड़ते हैं। इस घमण्ड के कारण से उन की असली बुद्धि को जंग लग गया है—मैल चढ़ गया है। अतः वे भी लण्ठाचार्य ही सिद्ध हुए। भाइयो! जिस से बात की गयी वही निरक्षर महाचार्य और काला अक्षर भैंस बराबर सिद्ध

हुआ। इस तरह से जमाना मेरा जानी दुश्मन बन गया। घोर और कट्टर विरोधी बन गया। सर्वत्र शत्रुता की आग भड़क उठी। यह है तो मेरी अपनी लगाई हुई ही, इस लिये ठन्डे दिल से भुगतूंगा।

यूनान भर के लोग, जिनमें मेरे मित्र भी हैं, यही समझते हैं कि बुद्धिमान् तो केवल देवता लोग ही हो सकते हैं। मनुष्य में इतनी योग्यता कहां कि वह बुद्धिमान् कहलाये। मैं भी इसी सिद्धान्त को मानता हूँ। परन्तु मैंने स्वयं तो अपने आप को बुद्धिमान् प्रसिद्ध नहीं किया। यह उन देवता लोगों ने ही, जिन को जमाना बुद्धिमान् समझता है, मुझे बुद्धिमान् घोषित और प्रसिद्ध किया है। देववाणी हुई है कि इस समय सुकरात ही सब से अधिक

बुद्धिमान् मनुष्य है। मैं स्वयं इस बात से सहमत नहीं हूं। इस देववाणी को गलत साबित करने के लिये ही भटकता फिरता रहा। भूख प्यास, गर्मी सर्दी, जंगल पहाड़, मार्ग कुमार्ग, वर्षा धूप आदि की कोई चिन्ता नहीं की। दिन रात एक कर दिये। मगर यह देववाणी गलत सिद्ध नहीं हो पायी। जितना मैंने प्रयत्न किया उतने ही शत्रु तथा विरोधी बढ़ते गये। भाइयो! ज्यों ज्यों इलाज किया मरज बढ़ता ही गया। मैं इस को जितना गलत साबित करता हूँ उतना ही यह ठीक साबित होता है। नौबत यहां तक पहुंची कि आज मैं आप लोगों के सामने अपराधी के रूप में खड़ा हूँ।

देखो! यदि मैं छली कपटी होता तो

लोगों को अपने विरुद्ध नहीं होने देता। धोखेबाज आदमी कभी किसी को अपना शत्रु नहीं बनने देता। शत्रु तो स्पष्टवक्ता और सत्यवादी के ही बनते हैं। सच्ची बात ऐसी कह दी, जैसी आंख में उंगली डाल दी।

मेलीटस—हे एथैंसवासियो ! यह सुकरात बहुत ही खराब आदमी है। यह नौजवानों को बहकाकर उलटे मार्ग पर चलाता है। उनको सुधारता नहीं बिगाड़ता है। जिन देवताओं को सब लोग मानते हैं, उन का खुल्लम खुल्ला खण्डन करता है। अपने कल्पित और मनघड़न्त देवताओं को मानता है। इसलिये इसका कुछ इलाज

होना चाहिये, नहीं तो देश की बहुत हानि होने की सम्भावना है।

सुकरात–मित्रो! जहां तक देवताओं के मानने का संबंध है। वहां तक तो ठीक है। मैं देवताओं को मानता तो हूं, मेलीटस मुझे बिलकुल नास्तिक सिद्ध नहीं कर पाया। झूठ कहां तक चल सकती है, कहीं न कहीं उसकी कली खुल ही जाती है। श्री मेलीटस जी जरा सामने आइये। मैं युवकों को बिगाड़ता हूं तो आप तो सुधारते होंगे?

मेलीटस–क्यों नहीं, अवश्य ही सुधारता हूं।

सुकरात–आप युवकों को किस तरह से सुधारते हैं?

मे०— कानून से।

सु०— क्या कानून आपके हाथ में है ?

मे०— नहीं, कानून तो विचारपतियों (जजों) के हाथ में है।

सु—० यदि युवक कानून से सुधरते हैं तो उनके सुधारक कानून जानने वाले विचारपति हुये, आप नहीं। क्यों है न ठीक।

मे०— चुप रहता है।

सु०— बोले सो अभय, चुप जी की जय। लगे हाथ यह भी बता देने का कष्ट करें कि यूनान भर में नौजवानों को बिगाड़ने वाले और कितने आदमी हैं ?

मे०— कितने ही नहीं। एक तुम हो जो

नौजवानों को बिगाड़ते हैं।

सु०—अच्छा, आपके कहने के अनुसार सारा यूनान युवकों को सुधारने में लगा हुआ है और केवल मैं बूढ़ा और साधनहीन अकेला ही नौजवानों को बिगाड़ता हूँ। एक तरफ़ मैं हूं और दूसरी तरफ़ सारा यूनान। इसका नतीजा क्या निकल रहा है?

मे०—यही कि युवक बिगड़ते जा रहे हैं।

सु०—अर्थात् मैं सारे यूनान को नीचा दिखा रहा हूं।

मे०—और क्या, दिखा तो रहे हो।

सु०—फिर तो मैं सारे यूनान से अधिक बलवान् और बुद्धिमान् ठहरा। दो और "दो–पांच–अण्ड बण्ड की जय। सब

हंसते हैं।

मे०—इस में हंसने की कोई बात नहीं है। देखो, एक गन्दा फल सौ अच्छे फलों को खराब कर देता है। सौ अच्छे फल एक गन्दे फल को अच्छा नहीं बना सकते। यही बात तुम पर घटती है। तुम गन्दे हो, इसी लिए किसी के काबू में नहीं आते हो।

सु०—भाइयो! जहां तक काबू में आने और न आने का सम्बन्ध है, वहां तक तो मेलीटस के कहने के अनुसार मैं ही बलवान् ठहरता हूं।

यह दूसरी बात है कि मैं अच्छा हूँ या बुरा बाकी रही बात फलों वाली। सो फल

तो ज्ञान रहित जड़ वस्तु हैं। वे गन्दे फल के गन्देपन को समझते नहीं और समझ कर भागने की शक्ति नहीं रखते गन्दे फल के साथ टकरा कर हवा गन्दी हो जाती है। वही बाकी सब फलों को भी खराब कर देती है। यह तो हवा की शक्ति है, गन्दे फल की नहीं। देखो, घर में आग लग जाये या सांप निकल आये तो घर के सब लोग बाहर भाग जाते हैं। घर के वासी चेतन हैं, ज्ञानवान् हैं, भागने की, दूर हटने की शक्ति रखते हैं। इसी तरह यदि मेरे विचार गन्दे होते या हानिकारक होते तो नौजवान भाग कर दूर हट जाते। मालूम होता है कि मेरे विचारों में कोई आक-

र्षण (कशिश) है। कोई अच्छा गुण है; जो नवयुवकों को अपनी तरफ खैंचता है। मानते हो न दलील को।

मे०—आकर्षण और गुण तो कोई नहीं। हां तुम्हें खराब बातों को भी अच्छा बनाने की चालाकी आती है। बुरी से बुरी बात को भी ऐसे सुन्दर ढंग से रखते हो कि नौजवान बहक जाते हैं।

सु०—अच्छा भाई मेलीटस! मुझ में बुरी वस्तु को अच्छी बना कर उपस्थित करने की शक्ति तो आप मानते ही हैं, फिर अच्छी को अच्छी क्यों नहीं बना सकता। जब मैं बुरी वस्तु को अच्छी बना सकता हूं, तब अच्छी वस्तु को और भी अच्छी बना सकता हूं। जब अच्छी वस्तु को

और भी अच्छी बना कर उपस्थित कर सकता हूं, तब बुरी वस्तु को अच्छी बनाने की मुझे क्या जरूरत है ? अच्छा यह तो बताओ कि मैं युवकों को जान बूझ कर बिगाड़ता हूं या बिना जाने ही ?

मे०—युवकों को तुम जान बूझ कर बिगाड़ते हो, अनजाने में नहीं।

सु०—कोई मनुष्य जान बूझ कर अपने घर में आग लगा दे तो उसकी हानि होगी कि नहीं ?

मे०—हां, उसकी हानि अवश्य ही होगी। मेरे विचार में इतना पागल कोई नहीं होगा, जो अपने घर में जान बूझ कर आग लगा दे।

सु०—शाबाश मेलीटस शाबाश ! बिगड़ा हुआ पड़ौसी हानि करेगा या लाभ ?

मे०—बिगड़ा हुआ पड़ौसी हानि ही करेगा, लाभ कभी नहीं करेगा।

सु०—कोई मनुष्य जान बूझ कर भी अपने पड़ोसियों को अपनी हानि करवाने के लिये बिगाड़ सकता है या नहीं ?

मे०—ऐसा तो कोई पागल ही कर सकता है।

सु०—तो क्या मैं पागल हुआ हूं, जो अपने पड़ौसी नौजवानों को अपनी हानि करवाने के लिये बिगाड़ बैठूं। जब तुम मुझ से थोड़ी बुद्धि रखते हुये भी इस हानि लाभ की बात को समझते हो, तब क्या मैं नहीं समझता हूँगा ? फिर

आप यह कैसे कहते हैं कि मैं नौजवानों को बिगाड़ता ही हूं। प्रथम तो मैं नौजवानों को बिगाड़ता नहीं, यदि बिगाड़ता हूँ तो अवश्य ही अनजाने में बिगाड़ता हूँ। जब मैं अनजान हूं तब अपराधी नहीं हूं। फिर आप मुझे कचहरी में क्यों घसीट लाये हैं। क़ानून तो लोगों को कुछ समझाता नहीं, वह तो दण्ड ही देना जानता है। अब यह बतलाइये कि मैं युवकों को बिगाड़ता कैसे हूं?

मे०—नगर के पुराने देवताओं पर से नौजवानों का विश्वास खो कर नये नये देवताओं पर उनका विश्वास जमाते हो।

सु०—तुम्हारे कहने के अनुसार मैं पुराने नहीं तो नये ही सही, देवता तो मानता हूं। उन पर स्वयं विश्वास करता हूँ, नौजवानों का उन पर विश्वास कराता हूँ। फिर बिलकुल नास्तिक तो नहीं हूँ। अरे! भोले भक्त झूठ तो बोलने लगे ही थे फिर सीधा यही कहना था कि सुकरात, किसी भी देवता को नहीं मानता, बिल्कुल नास्तिक है।

मे०—हां, मेरा तात्पर्य तो यही है कि तुम निपट और निरे नास्तिक हो।

सु०—वाह वाह! तेरी धर्मप्रीति! क्या मैं सूर्य तथा चन्द्रमा को और लोगों की तरह देवता नहीं मानता?

मे०—सुनो, विचारपति महानुभावो सुनो!

सुक्रात सूर्य तथा चन्द्रमा को पत्थर और रेत मिट्टी के बने हुए मानता है, देवता नहीं।

सु०—क्या कोई ऐसा भी मनुष्य हो सकता है कि जो सर्प विद्या पर तो विश्वास रखता है, परन्तु सर्पों की सत्ता (हस्ती) पर विश्वास नहीं रखता।

मे०—ऐसे मनुष्य का मिलना बिल्कुल नामुमकिन है।

सु०—फिर यह कैसे हो सकता है कि मैं देवताओं पर तो विश्वास रखता हूँ परन्तु उन की सत्ता नहीं मानता। जिस वस्तु पर विश्वास किया जाता है, उसका होना अत्यन्त आवश्यक होता है।

मे०—तुम तो केवल दैवी बातों को मानते हो

देवताओं को नहीं।

सु०—दैवी बातें किस से सम्बन्ध रखती हैं?

मे०—देवताओं से।

सु०—मेरी बातों से देवता तो फिर भी सिद्ध हो गये। भला कभी यह भी ठीक हो सकता है कि सोहन रामनाथ की बातें तो मानता है परन्तु रामनाथ को नहीं मानता।

मे०—ऐसा तो कोई बहुत बे समझ ही कह सकता है।

सु०—भाई मेलीटस! आप ही ऐसा कह कर बे समझ बन रहे हैं। आप ही तो कह रहे हैं कि तुम देवताओं की बातें ही बातें मानते हो, स्वयं देवताओं को नहीं मानते। क्यों है न सिर पर भूत सवार

मे०—सुकरात तुम तो देवताओं को नहीं उन की दोगली सन्तान को मानते हो।

सु०—दोगली सन्तान से आप का क्या मतलब है?

मे०—यही कि उन के पिता देवता हैं और माताएं दासियां हैं।

सु०—अच्छा भाई, साहब! आप फिर फंस गये। भला संसार में कोई ऐसा भी मनुष्य हो सकता है कि जो गधों और घोड़ों के बच्चों की सत्ता तो मानता है और गधों घोड़ों की सत्ता को नहीं मानता।

मे०—ऐसा तो कोई पागल ही कह सकता है।

सु०—भाई मेलीटस! क्षमा करना। आप ही ऐसा कह रहे हैं कि सुकरात देवताओं

की सत्ता को नहीं मानता, केवल उनकी सन्तानों को मानता है। क्यों कहीं भांग तो नहीं पी आये देखो एथैंसवासियो मेरी सचाई किस खूबी से आप सब पर प्रकट हो रही है। अब तुम्हें निश्चय हो जाना चाहिए कि सुकरात बिलकुल सच्चा है। मेरे पास सचाई है और इस के साथ बुद्धि तथा युक्तियां भी हैं। फिर मुझे जीतना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। इतना कुछ होते हुये भी मुझे अपराधी ठहरा कर प्राण दण्ड अवश्य ही दिया जायेगा।

मे०—जब आप सच्चे हैं, तब ऐसा क्यों होगा हमने तो सुना है कि सांच को आंच नहीं।

सु०—इस का कारण परम्परा और अन्ध विश्वास है। परम्परा और अन्ध विश्वास के सामने सच्चाई की कोई पेश नहीं जाती।

मे०—वह परम्परा और अन्ध विश्वास क्या है?

सु०—आज तक यूनान में मेरे जैसे सुधारक कितने ही फांसी पर लटकाये जा चुके हैं और कितने ही लटकाये जाते हैं। यही परम्परा अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने वाली रीति है। जो लोग आंख के अन्धे तथा गांठ के पूरे होते हैं, वे एक बार किसी बात को बिना सोचे समझे ही पकड़ लेते हैं, फिर जीवन भर उसी के साथ चिपटे रहते हैं,

छोड़ने या सोचने समझने का नाम भी नहीं लेते। यही अन्ध विश्वास है। ऐसे हजरत जिसके विरुद्ध हो जायें, बस समझो उसकी खैर नहीं है। परम्परा पर चलने वाला अन्ध विश्वासी अर्थात् रूढ़िवादी (बेमाने पुराने रीति रिवाजों को मानने वाला) मनुष्य सत्यप्रूफ (जिस पर सच्चाई का कोई असर न हो) होता है। इस लिये मुझे अपनी हार निश्चित सी दीख रही है।

मे०—सुकरात, जब तुम इतने विचारवान तथा बुद्धिमान् हो, तब तुम ऐसे काम ही क्यों करते हो, जिन से तुम्हारे प्राणों को खतरा हो ?

सु०—भाई साहब सुनिये ! जो मरजी हो

सवाल करो, उस का जवाब जरूर मिलेगा, परन्तु कभी मेरे भी एकाध सवाल का जवाब दिया करो! जवाब देने में इतनी कंजूसी क्यों? देखो जब कोई छोटा आदमी भी किसी काम को अपना कर्त्तव्य समझ कर एक बार आरम्भ करदे तब वह भी अपने प्राणों की परवाह नहीं करता तो मुझे इतने बड़े कर्त्तव्य के सामने प्राणों की क्या चिन्ता हो सकती है। बस कर्त्तव्य ही मुझ से ऐसा करवा रहा है। सच्चाई और कर्त्तव्य मनुष्य से सब कुछ करवा सकते हैं। प्राण तो उस को तिनके से भी तुच्छ मालूम होने लगते हैं।

मैं देश की विचार शैली देखता हूँ तो

मारे लज्जा के मेरा सिर झुक जाता है। मैं अपने आपको अपमानित तथा कलंकित समझता हूँ। लज्जित, अपमानित तथा कलंकित होने के बदले दिन में हजार बार मरना भी अच्छा समझता हूं। यह आप को मालूम ही है कि मैं तीन सफल युद्ध निर्भीकता पूर्वक लड़ चुका हूं। वहां मुझे प्राणों का खटका नहीं हुआ तो फिर इस कर्त्तव्य के युद्ध क्षेत्र में कैसे हो सकता है?

मे०—यह कर्त्तव्य तुम ने कहां से सीखा है?

सु०—देवताओं के संकेत तथा ईश्वर के आदेश से।

मे०—अच्छा, तो तुम अपने आपको ईश्वर का अवतार मानते हो?

सु०—अरे बुद्धू भाई ! जब आप मुझे ईश्वर का अवतार ही मान बैठे तब फिर मैं नास्तिक कैसे हुआ ? भूत वही जो सिर पर चढ़ कर नाचे ।

मे०—क्या आप मृत्यु से नहीं डरते हैं ?

सु०—मौत से कायर लोग डरा करते हैं या परलोक पर विश्वास नहीं रखते देखो एक आदमी को मोटर से उतार कर गधे पर चढ़ाया जाये तो वह घबराता है, यदि हवाई जहाज पर चढ़ाया जाये तो वह बहुत प्रसन्न होता है । ठीक इसी तरह से जो लोग परलोक में विश्वास नहीं रखते या उसे बुरा समझते हैं वे मौत से डरते हैं । मैं परलोक को बहुत ही उत्तम समझता हूँ। वहां पहुँचने

के लिये हर समय लालायत रहता हूं। वहां कोई सवारी नहीं जाती। केवल मृत्यु के द्वारा ही वहां पहुंच सकता हूँ। इस लिये मृत्यु को परलोक की सवारी समझ कर उस से बहुत प्रेम करता हूं। एथैंस वासी भाइयो! अब आप लोग अनुमान करें कि नास्तिक सुकरात है या मेलीटस?

मे०—देखो, सुकरात यदि तुम जो कुछ अब तक करते रहे हो उस से बाज आ जाओ तो शायद एथैंस वासी दया करके तुम्हें छोड़ ही दें।

सु०—अरे, मिट्टी के माधो मेलीटस! सुकरात किसी की दया का पात्र बनने के लिये पैदा नहीं हुआ है। मैं परमेश्वर के

आदेश को छोड़कर मनुष्यों के आदेश को नहीं मान सकता । ऐसा करना हमारे जैसे आस्तिकों को शोभा नहा देता । मैं भूले भटकों को सीधा मार्ग दिखाने से कभी बाज नहीं आऊंगा । मेरे पास जो सच्चाई है, उस को छिपा कर पाप नहीं कमाऊंगा । मेलीटस ! तुम और तुम्हारे साथी संगी सच्चे धर्म को नहीं पहचानते । न ही तुम्हारे अन्दर धर्म का कोई अंश है । फिर धर्मात्मा बनने का ढोंग रच कर धर्म जैसी उत्तम वस्तु की इतनी ठेकेदारी क्यों कर रहे हो? तुम अपना सौभाग्य समझो कि परमात्मा ने मुझे तुम्हारी सेवा करने के लिये भेजा है । परमात्मा की देन को समझो

इस से तुम को आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी ।

संसार में धर्म अर्थात् कर्त्तव्य ही मुख्य और प्रधान वस्तु है । इसी से धन दौलत, महल मकान आदि सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति होती है । तुम यह समझते हो कि धन दौलत, महल मकान आदि के द्वारा धर्म मिल सकता है । यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है । यह शरीर भी धर्म से ही मिलता है। यदि धर्म के लिये यह शरीर भी छोड़ना पड़े तो चिन्ता नहीं होनी चाहिये क्योंकि यदि हम सच्चे धर्मात्मा हैं तो इस से भी अच्छा शरीर मिल जायेगा । फिर

चिन्ता क्यों ? यही मेरी शिक्षा है। क्या इस शिक्षा से नौजवान बिगड़ते हैं? हे एथैंसवासी भाइयो! मैंने अपने जीवन का उद्देश्य बहुत सोच समझ कर बनाया है। यह बिल्कुल तथ्य तथा सत्य है। इस से पीछे हटना मेरा कार्य नहीं है। आप मुझ से जो चाहें बर्ताव करें, चाहे फांसी पर लटका दें, मैं अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा से इंच भर भी पीछे नहीं हट सकता। आप सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु मेरा प्रण नहीं तुड़वा सकते। प्रण तोड़ने की अपेक्षा एक दिन में हजार बार मरना भी अच्छा समझता हूँ।

मुझे आप समाप्त करेंगे तो इस में

मेरी कोई हानि नहीं है। मुझ से अधिक हानि आप लोगों की है। आप लोग मुझे अपराधी समझ लें तो मेरी कोई हानि नहीं। मैं तो परमात्मा की दृष्टि में अपराधी बनना बुरा समझता हूँ। परमात्मा ने तुम्हारी सेवा के लिये मुझे दान रूप में भेजा है। उस के दान का अपमान कर के तुम कभी सुखी नहीं रह सकते। अब तक मैंने जो कुछ भी आप के सामने विचार रखे हैं, वे अपने बचाव के लिये नहीं अपितु सच्चाई को प्रकट करने के लिये हैं। सच्चाई प्रकट करना ही मेरे जीवन का परम उद्देश्य है इस बात की गवाह मेरी कंगाली है। यदि सच्चाई का पास न होता तो मैं

भी आप लोगों की तरह धनवान् हो सकता था।

मेरे हृदय में भगवान् की तरफ से एक प्रकार की प्रेरणा होती है। यह प्रेरणा मुझे बुरे कार्यों से फौरन रोक देती है। अच्छे कामों के लिये मुझे उत्साहित करती रहती है। इस के अनुसार चलने से मुझे कोई भय नहीं। वरना सब का विरोध कर के मनुष्य इस संसार में थोड़े ही दिन रह सकता है। परन्तु मैं इन थोड़े ही दिनों में वह कार्य कर जाऊंगा, जिस को जमाना सदियों तक याद रखेगा। अन्याय तथा अधर्म का पक्ष लेने की अपेक्षा मौत को लाखों गुणा अच्छा समझता हूँ।

एक बार राजसभा ने आठ सेना-पतियों को फांसी का दण्ड दिया था। राजसभा की उस नियम विरुद्ध आज्ञा का विरोध केवल मैंने ही किया था। मुझे कई तरह की धमकियां भी दी गयी थीं। तीस सभासदों की राजतन्त्र सभा ने भी मुझे एक निरपराध व्यक्ति को पकड़ लाने के लिये आज्ञा की थी। वह आज्ञा न्याय विरुद्ध थी। अतः मैंने उस का खुले दिल से विरोध किया। उस को अमान्य समझ कर पालन नहीं किया। इन दो बातों से आप लोग समझ सकते हैं कि मैं मृत्यु से लेश-मात्र भी नहीं डरता हूं। परन्तु ईश्वर की आज्ञा का तथा न्यायधर्म का

उल्लंघन करने में बहुत अधिक भय-
भीत होता हूं।
मैं कर्म तथा अधर्म के विषय में
किसी का लेशमात्र भी पक्ष नहीं करता।
मैंने आज तक कभी किसी से फीस
नहीं ली और न ही किसी का गुरु
बनने का दावा किया है। किसी को
कुछ सिखाने का भी दावा नहीं करता।
फिर मैं लोगों को बहका कैसे सकता
हूं कोई मूर्ख मुझ से बातचीत करता
है तो वह अपनी मूर्खता प्रकट करते
हुये भी बुद्धिमान् होने का दावा करता
है और अपने आपको समझदार
समझता है तो सुनने वाले सज्जनों को
बहुत आनन्द आता है। इस लिये

मेरी या उस मूर्ख की बातें सुनने के लिये लोग लालायत हो जाते हैं।

मेलीटस—आप लोगों की समीक्षा क्यों करते हैं

सुकरात—क्योंकि मुझे ऐसा करने का दैवी आदेश है। परमात्मा तथा देवताओं की ऐसी आज्ञा है।

मे०—आप को यह आदेश कैसे हुआ ?

सु०—स्वप्नावस्था में दैवाज्ञा द्वारा मेरे हृदय में ऐसी प्रेरणा होती है।

मे०—क्या प्रमाण है कि आप को समीक्षा करने का दैवी आदेश है ?

सु०—यही कि उस दैवी आदेश का आप जैसे चालाक मनुष्य भी अभी तक खण्डन नहीं कर पाये। यदि दैवी

आदेश न होता तो कोई न कोई उस का खण्डन कर ही डालता । यदि मैं अपनी इच्छा से जवानों को बिगाड़ता तो संसार का अनुभव प्राप्त करके सब नहीं तो उन में से कुछ तो अवश्य ही मेरा विरोध तथा अनिष्ट करते मुझ पर मुकद्दमा करते, गवाही देते । इस तरह से मेरे किये का मुझे मजा चखाते । पर ऐसा नहीं हुआ है । यह दैवी आज्ञा का पक्का प्रमाण है ।

मे०—शायद वे लोग आप से कुछ संकोच करते हों

सु०—तुम्हारे कहने के अनुसार उन के बिगाड़ने में जब मैंने सङ्कोच नहीं किया फिर वे क्यों करते हैं ? दुर्जनतोष न्याय से मान लो कि वे संकोच करते

है। उन बिगड़े हुये जवानों के माता पिता तथा अन्य सम्बन्धी तो संकोच नहीं करते। फिर वे मेरा विरोध क्यों नहीं करते ?

मे०—शायद वे भी संकोच करते हों।

सु०—तो फिर इस संकोच में भी कोई रहस्य है, कोई भेद भरा है। जब मैं सब के लड़कों को बिगाड़ता हूँ, तब वे सब ही संकोच कैसे करते हैं। एकाध तो ढीठ भी निकलना चाहिये था। पर मालूम होता है कि वे अपने लड़कों को बिगाड़ा नहीं सुधरा समझते हैं। उन में से यहां भी बहुत से बैठे हैं। वे बोलते क्यों नहीं ? देखो, वह उधर कोई मेरे पक्ष में बोल रहा है।

मैंने आप का कुछ नहीं बिगाड़ा।
आप का कोई लड़का भी नहीं बिगाड़ा।
फिर निःसंकोच और ढीठ हो कर आप
मेरे पीछे कैसे पड़ गये। आप के मता-
नुसार जिन की मैंने हानि की है, वे
तो मेरा विरोध करने में संकोच करते
हैं, आप का कुछ नहीं बिगाड़ा, फिर
आप संकोच क्यों नहीं करते। ? इस में
क्या रहस्य है ?

मे०—ये सब इतने बिगड़ चुके हैं। कि अन्धे
होकर आप की ही हां में हां मिला
देंगे।

सु०—इनके सम्बन्धी तो नहीं बिगड़े हैं। उन
से ही मेरे विरुद्ध गवाही दिला दें ?

मे०—अरे भाई! सभी तुम्हारा पक्ष करते हैं।

सु०—फिर आप सब से पीछे क्यों रह गये। उनके साथ साथ आप भी मेरा पक्ष क्यों नहीं करते ? सब लोग समूह रूप से तो न्याय और सत्य का ही पक्ष लिया करते हैं, झूठ और अन्याय का नहीं। झूठ और अन्याय का पक्ष तो चन्द एक आप जैसे हजरत ही लिया करते हैं।

मे०—इन बातों में कोई सार नहीं। न्याया-धीशों से ही दया की प्रार्थना करते तो शायद कुछ बन पड़ता।

सु०—न्यायाधीश इस न्यायासन पर सौगन्ध खाकर बैठते हैं कि दूध का दूध और पानी का पानी अलग छानेंगे। यदि मैं इन से दया की प्रार्थना करूं तो इन

की सौगन्ध भंग करवाने का अपराधी बन जाऊंगा ऐसा करना मुझे अभीष्ट नहीं। मैं तो इन से न्याय पर डटे रहने की ही प्रार्थना कर सकता हूँ, और कुछ नहीं। दया की प्रार्थना करने का यह भी मतलब हो सकता है कि मैं मौत से डरता हूँ, देवी देवताओं और परमात्मा पर विश्वास नहीं रखता। इस लिये पक्का, पूरा, निरा और निपट नास्तिक हूं। तुम्हारे कहने से तो नास्तिक सिद्ध नहीं हुआ, अपने इस कर्म से अवश्य हो जाऊंगा। इस लिए मुझ से दया प्रार्थना को स्वप्न में भी आशा न करें।

मैं ईश्वर को मानता हूं। देवी देव-

ताओं पर पूर्ण विश्वास रखता हूँ। सब का भला चाहता हूं। सत्य नियमों का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं। बस मैं इतना ही कहना चाहता था, सो कह दिया है। अब आप लोग जैसा अपने और मेरे लिये उचित समझें, वैसा करें। मुझे आप लोगों की आज्ञा शिरोधार्य है।

अभियोग का निर्णय

राजसभा में कुल पांच सौ एक सभासद् हैं। उनमें से दो सौ बीस सभासद् सुकरात के हक में बोलते हैं और दो सौ इक्यासी सभासद् उस के विरुद्ध बोलते हैं। इस तरह

इकसठ वोटों या मतदानों से सुकरात अपराधी ठहराया जाता है।

सुकरात—एथेन्सवासी भाइयो ! आपका यह निर्णय मुझे सिर माथे पर स्वीकार है। इस से मुझे कोई आश्चर्य भी नहीं हुआ क्योंकि मुझे पहिले ही निश्चय था कि आप लोग मुझे अपराधी घोषित करेंगे। हां, मुझे इस बात का बड़ा भारी आश्चर्य है कि दो सौ बीस मतदान मेरे पक्ष में हैं। मुझे आशा नहीं थी कि इतने वोट मेरे हक में पड़ेंगे। इसका मतलब यही है कि केवल तीस इकत्तीस वोट मेरे हक में और आ जाते तो मैं अपराधी न ठहराया जाता। अस्तु परमात्मा जो कुछ करता है, सो ठीक ही करता है। इस प्रकार की मौत के कारण से जमाना

सदा मेरे पक्ष में रहेगा, आप लोगों की सदा निन्दा होगी। यशोधन से बड़ा कोई धन नहीं। इस संसार से जाना तो था ही, परन्तु आप लोगों ने मुझे बहुत अच्छे तरीके से भेजा है। अतः मैं आप सब का धन्यवाद करता हूँ। क्योंकि आप लोगों ने स्वयं बद-नामी लेकर मुझे नेकनामी का भागी बनाया है।

मैंने धन नहीं कमाया, यश नहीं कमाया, नाम और वैभव भी नहीं पाया। रिश्तेदार भी नहीं बनाये। कोई बड़ा ओहदा भी प्राप्त नहीं किया। खेल कूद नाच गान द्वारा मजा भी नहीं किया। केवल अपना कर्त्तव्य निभाता रहा। दैवी आदेश का पालन करता रहा। आप को जगाता रहा। इन कामों को करके

मुझे बहुत आनन्द मिला है। मैं संसार में सब से उत्तम पदार्थ मृत्यु को ही समझता हूं। इस लिये इन कामों के कारण से मुझे इनाम मे संसार का सब से उत्तम पदार्थ मिलना चाहिये था सो आप लोगों की कृपा से मुझे मौत मिली है। आप का सौ सौ बार धन्यवाद है।

यदि मुझ पर जुर्माना होता तो मैं महा दरिद्र कहां से देता। यदि कैद हो जाती तो दयाहीन महा कठोर नरपशु जेलरों के कठोर नियन्त्रण में अपनी शेष आयु बितानी पड़ती, जो मेरे लिये मौत से भी अधिक दुःखदायी होती। यदि मुझे देश निकाला मिलता तो दूसरे देशों में मारा मारा फिरता। जब अपनी जन्मे भूमि में ही ऐसा हाल, है तब

विदेश में न जाने कैसा होता। यहाँ रहना मेरे लिये महा दुःखदायी हो जाता। इस तरह से स्थान स्थान की धूलि चाटनी पड़ती, जगह जगह की खाक छाननी पड़ती। जान बचाने का खूब मजा मिलता।

विदेश मैं जा कर में चुप हो कर भी नहीं रह सकता था। संसार भर में मेरे लिये कोई सब से अधिक कठिन कार्य है तो वह चुप हो कर— मौन धारण करके समय व्यतीत करना है। इस लिये मृत्यु दण्ड ही मेरे लिये सब से अच्छा दण्ड है।

प्राण-दण्ड की आज्ञा सुन कर धीर सुकरात का व्याख्यान—

विरोधी लोगों से—

एथेंसवासी भाइयो ! आप लोग कुछ जल्दी कर बैठे। इस निर्णय को सुन कर सब लोग आप पर लानत का वोट पास कर करेंगे। इस में कोई सन्देह नहीं कि मैं मूर्ख हूं, परन्तु आप लोगों की निन्दा करते समय लोग मुझे अवश्य ही बुद्धिमान् कहेंगे। यदि आप कुछ दिन सब्र करते तो बूढ़ा होने के कारण से मैं अपनी आयी आप ही मर जाता। आप पर यह कलंक न लगता। सब्र का फल मीठा होता है, पर आप लोगों के भाग्य में लिखा नहीं था। मैं यह बात केवल उन लोगों के लिये ही कह रहा हूं, जिन्होंने मेरे विरुद्ध सम्मति दी है।

कुछ लोग आप में से यह भी सोच रहे होंगे कि सुकरात ने कोई करारी युक्ति नहीं

ही, शायद जानता ही न हो। भाइयो! मैंने युक्तियां तो बहुत दी हैं, परन्तु मैंने वैसा नहीं किया जैसा आप को पसन्द था। जैसे—नम्रता पूर्वक गिड़गिड़ाना, हाथ पैर जोड़ना, मिन्नत समाजत करना, रोना धोना, पैर पकड़ना, नाक रगड़ना, पैरों में टोपी या पगड़ी रखना आदि आदि। आप लोगों को इन बातों की आदत सी पड़ गयी है। परन्तु ये बातें मेरे योग्य हैं नहीं। मैं तो ऐसा सात जन्म भी नहीं कर सकता। इन हीन कर्मों से तो मौत की भी मौत हो जाये। इन बातों के अभाव में आप लोगों को मेरी ठोस युक्तियां भी खोखली तथा सारहीन दीखती हैं। छुक-रात सब कुछ कर सकता है, मगर नामर्दी और हींजड़ेपन का काम कभी नहीं कर सकता।

मृत्यु से बचने के लिये मनुष्य बहुत कुछ कह सकता है, परन्तु सचाई तो नपी तुली ही हो सकती है, सो मैंने सीधे सादे शब्दों में कह डाली। सत्यप्रिय मनुष्य को सत्य मात्र ही कहना उचित है। उसे मौत का कोई भय नहीं होता। प्राण जायें चाहे बचें उस ने तो हर हालत में सत्य का पालन करना है, अधर्म से बचना है। अधर्म की गति मृत्यु से कहीं तीव्र है। अतः इससे बच निकलना मृत्यु से भी अधिक मुश्किल है।

मैं धर्म के कारण मृत्यु के द्वार पर जा रहा हूँ। आप लोग अधर्म के कारण पाप के द्वार पर जायेंगे। मेरी मृत्यु धर्म और पुण्य के कारण से हो रही है और आप लोगों की अधर्म तथा पाप के कारण से

होगी । दोनों में महान् अन्तर है। यही अन्तर मेरे सन्तोष का कारण है ।

मरते समय मनुष्य में भविष्यवाणी करने की विशेष शक्ति आ जाती है । सो मेरी भविष्यवाणी सुनिये । आपने मुझे जो प्राण दण्ड दिया है, आप लोगों को इस से भी कठोर भुगतना पड़ेगा । आप यह न सोचें कि हमें कोई कुछ कहने वाला नहीं है । आप देख कर हैरान परेशान हो जायेंगे कि अनेक मनचले नौजवान आप लोगों का दृढ़ता पूर्वक विरोध करेंगे । मुझ से भी पक्के लोगों से आप की टक्कर होगी । उन को आप मेरी तरह से दण्ड नहीं दे सकेंगे । उन की जबान बन्द नहीं कर सकेंगे । निन्दकों की जबान पर लगाम लगाने के

बदले अपने दोषों को दूर करना कहीं अधिक अच्छा है।

मित्रों से—

प्रिय मित्रो ! आप लोगों ने मुझे निर्दोष तथा निरपराध ठहराया है। वास्तविक न्याय प्रिय न्यायाधीश तो आप लोग ही हैं। दैवी संकेत सदा मेरे साथ रहा है। अनुचित कार्य में हाथ डालते ही वह मुझे रोक देता था। इस कार्य में वह सदा मुझे उत्साहित करता रह है। इस बात को केवल आप लोगों ने ह समझा है और किसी ने नहीं।

अब मुझ पर वह विपत्ति आने वाली जिस से सारा संसार भयभीत रहता है। इ भी दैवी संकेत मेरे साथ है। मुझे बोलते उत्साह दे रहा है। इस का यह अभिप्राय ह

कि मुझे मृत्युदण्ड ठीक ही मिला है। इसी में हम लोगों का भला होगा। स्वयं भगवान् ने हमें याद किया है। उन के दर्शनों से अमर हो जाऊंगा, मुक्त हो जाऊंगा। यह मुक्तिपद मृत्यु द्वारा ही प्राप्त होगा। अतः मृत्यु को आपत्ति और विपत्ति समझने वाले लोग भारी भूल करते हैं।

दोस्तो! मृत्यु के दो ही मतलब हो सकते हैं। या तो मनुष्य मर कर सदा के लिये महा निद्रा में सो जाता है, कभी उठने का नाम नहीं लेता। सदा के लिये समाप्त हो जाता है। या फिर मौत परलोक गमन का आरम्भ मात्र है। यदि पहली बात के अनुसार मैं सदा के लिये समाप्त हो गया, महा निद्रा में सो गया तो इस से उत्तम अवस्था और क्या

मिल सकती है। जिस रात्रि को हमें गहरी नीन्द आती है, कोई स्वप्न भी नहीं आता तो वह रात्रि हमें विशेष सुखकारी प्रतीत होती है। महा निद्रा में महा सुख है। संसार का प्राणि-मात्र चिर सुख चाहता है। वह चाहता है कि एक बार जो सुख हाथ लग जाये, वह फिर कभी समाप्त न होने पावे। सो ऐसा अनन्त सुख मृत्यु रूपी महा निद्रा से ही मिल सकता है। अतः ऐसी मृत्यु महासुखदायी है।

या यह मृत्यु परलोक गमन का आरम्भ मात्र है। यदि ऐसा है तब भी चिन्ता की कोई बात नहीं। हम एक ऐसे स्थान पर पहुँच जायेंगे, जहां दुनिया का कोई रगड़ा झगड़ा नहीं होगा। यह अत्याचार और अन्याय वहां नहीं है। झूठ तूफान और मिथ्यावाद से,

वहां पहुँच कर पीछा छूट जायेगा। वहाँ सत्य-वादियों के सत्य की सच्ची परख होती है। वहाँ तो हमें बहुत ऊंचा आसन प्राप्त होगा। फिर क्या चिन्ता है।

देव लोक में यहां से गये हुये बड़े बड़े ऋषि मुनियों के दर्शन होंगे। ज्ञानी विज्ञानी, शूरवीर कवि लेखक सौम्य सरल स्वभाव महानुभावों के सम्पर्क (मेल) तथा वार्तालाप से परमानन्द प्राप्त होगा। यदि मृत्यु के बाद ऐसा कुछ होगा तो मैं बार बार मरने को भी तैयार हूं। मेरे जैसे तर्क प्रिय लोग वहां बहुत मिलेंगे। उनको भी संसार ने मेरी तरह ही यहां से खदेड़ा है। वे सब मेरा खुले हाथों स्वागत करेंगे। आहा! महान् आनन्द का समय होगा। जो कार्य यहां नहीं कर पाया,

वह वहां पहुँच कर पूरा करूंगा वहां जा कर आप दण्ड या मृत्यु का भय नहीं रहेगा। अपनी सुनाऊंगा और उनकी सुनूंगा। अहा! कितना मजा आयेगा।

सो मेरे पक्ष में वोट देने वाले न्यायाधीश भाइयो! जब कभी मृत्यु आप के सामने आये, उसका सच्चे दिल से स्वागत करना, घबराना नहीं। यह याद रखना कि—अन्त भले का भला, सांच को आंच नहीं। देखो विरोधियों ने मुझे बहुत अधिक कष्ट पहुँचाने के लिये मृत्युदण्ड दिया है। पर मुझे प्रसन्न देख कर वे लोग बहुत दुखी प्रतीत हो रहे हैं। मैं स्वयं तो उन को दुखी नहीं करना चाहता, यह तो उन के कर्म हैं, जो ऐसा फल दे रहे हैं उन से मेरी एक विनती

यह भी है कि वे मेरे तीन लड़कों को भी इसी प्रकार से मृत्युदण्ड दे कर अपनी कदरदानी का सबूत दें। मेरी सन्तान मेरे बताये हुये मार्ग पर चले। इसी मृत्यु द्वार से वे परलोक में आ कर मुझ से मिलें। इसी में उन का मान है। यही उन की सब से बड़ी कदर है।

अब समय समीप आ पहुँचा है। मैं मंगल मौत का और आप जगत में जाज्वल्य-मान (तेजस्वी) जीवन का मज़ा लें। मौत अच्छी है या जीवन इसका निर्णय तो निर्लेप नारायण ही कर कर सकते हैं। हमें तो जीवन में भी बहुत आनन्द मिला और अब मृत्यु से भी परम आनन्द मिल रहा है। साधुओं की सदा दिवाली।

सुकरात को प्राण दण्ड मिलने वाला ही

था कि पुरोहितों ने चार पांच दिन तक रहने वाले किसी धर्मोत्सव की घोषणा कर दी। इस समय में किसी अपराधी को प्राणदण्ड देना निषिद्ध था। अतः हमारे चरित्र नायक सुकरात को परलोक यात्रा के लिये दो चार दिन लेट होना पड़ा। सुकरात को जेल में भेज दिया गया। वहां से उन का परम मित्र क्रूटो उन को निकाल कर भगा ले जाना चाहता है। इस विषय में दोनों के बीच हुई बात चीत बहुत आनन्दप्रद है। सो आगे लिखते हैं।

क्रूटो तथा सुकरात का संवाद

स्थान—जेल

सुकरात–प्रिय मित्रवर्य क्रूटो! तुम इतने सवेरे यहां जेल में कैसे आये हो, क्या किसी

अपराध का दण्ड भुगतने आये हो ?

क्रुटो—अपराध किया तो नहीं है, अब करने का इरादा है।

सु०—सो क्या ?

क्रुटो—मैं जेल वालों को रिश्वत दे कर तुम को यहां से भगा ले जाने के लिये हाज़िर हुआ हूं। मैं काफी देर से यहां खड़ा था। तुम बहुत गहरी नीन्द सोये थे। यह देख कर मुझे महान् आश्चर्य हुआ कि सिर पर मौत सवार है और सुकरात शान्त हो कर इतनी गहरी निद्रा में सोया हुआ है। मैं आप को बहुत कुछ समझता था। परन्तु जितना कुछ आज समझ पाया हूँ, इतना तो कभी स्वप्न में भी नहीं समझा था अच्छा अब

जल्दी तैयार हो जाओ, समय बीता जा रहा है।

सु०—भाई कूटोजी ! आपने मुझे इस अवस्था में देखकर पहले से भी अधिक समझ लिया है। यदि मैं आपके साथ भागने को तैयार न हुआ तो आप मुझे और भी अधिक समझ पाओगे। मुझे आप की उस समझ से जो सन्तोष मिलेगा वह भाग कर जान बचाने में कहां। कल मैंने जो युक्ति युक्त व्याख्यान दिया था, वह तो सब मिट्टी में मिल जायेगा लोग यही कहेंगे कि हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के और हैं। कल बहुत से लोग मुझ से सहानुभूति रखते दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे सब

मुझ से फिर जायेंगे। भाई! मुझे इस नश्वर काया से अमर यश मिलता है। यह आप को क्यों अखरता है, लेने क्यों नहीं देते?

कुटो–अभिन्नहृदय मित्र! यह तो हमें भली भांति ज्ञात है कि सुख दुःख आप पर कोई प्रभाव नहीं रखते। तुम्हारे लिये मृत्यु और जीवन समान ही हैं। तुम्हें इस समय मौत से कोई घबराहट नहीं परन्तु हम तो अपने दुःख को रो रहे हैं। तुम्हारी जुदाई में हमें सब रो रो कर, सिर पीट पीट कर, मर जायेंगे। जहां आपने संसार का उपकार किया है, वहां आज हम लोगों पर भी दया करने की कृपा करें। यही मेरी विनीत

विनती है।

सु०—मैं ईश्वर और उसकी कर्मफल की व्यवस्था पर पूरा पूरा विश्वास रखता हूँ। जो कुछ परमात्मा करता है सो ठीक ही करता है इस पर विश्वास रखता हूँ। परलोक में पूरी आस्था है। आत्मा को अमर मानता हूं। मौत को केवल वस्त्र बदलने के समान समझता हूँ, यह संसार भर में सब से सुन्दर, सौम्य तथा सुखकारी वस्तु है। इसका तिरस्कार मैं कैसे करूं। लोगों ने मुझे नास्तिक होने का अपराधी ठहरा कर तो यह प्राण दण्ड दिया है। यदि मैं इसे सहर्ष स्वीकार न करूं और आप के कथनानुसार यहां से भाग निकलूं, तो अपने ही कर्मों से पूरा नास्तिक

सिद्ध हो जाऊंगा। जो लोग मेरे पक्ष में हैं, वे भी गालियां देने लग जायेंगे। भाई कूटो ! जीवन की अपेक्षा यश बड़ी चीज है। सो मुझे सुखपूर्वक प्राप्त करने दीजिये।

कूटा०—आप तो निपट निर्लेप थे। फिर यश के लोभ में कैसे आ गये ? ठीक है। यह लोभ बड़े बड़ों के तप को तोड़ देता है।

मु०—कृपालु कूटो कृपा करो। भागना कायरों का काम है, वीरों का नहीं। मुझ से यह हींजड़ापन क्यों करवाते हो। इस अन्तिम आयु में आ कर मुझ से वह क्यों करवाते हो, जो मैंने जवानी

की मस्ती में भी नहीं किया था। मेरे दृढ़ विश्वास को हिला कर मुझे मृत्यु के गढ़े में मत ढकेलो। अब यदि भाग निकलूं तो क्या अमर हो जाऊंगा। दो दिन आगे पीछे मरना तो है ही। अब तो दूसरों के सिर हो कर मर रहा हूँ। शायद फिर मरने का इतना सुन्दर अवसर हाथ न आये। ओहो! कृटो तुम अधीर क्यों हो उठे। वीरों के नेत्र आंसुओं से गीले नहीं हुआ करते। मैं तो भगवान् की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। किसी का फंसाया हुआ नहीं फंसा। यह तो जेल वालों की भूल है कि मुझे यहां रोक रखा है। यदि वे मुझे खुला छोड़ दें तो तब भी प्राण-

दण्ड के लिये नियत समय पर उन के पास या वधस्थान पर हाजिर हो जाऊंगा।

क्रटो०—भाई सुकरात! तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् बन्धु, मस्त, मतवाला, मतिमान् मित्र इस लोक में मुझे नहीं मिलेगा। मैं अपने सुख के लिये रो रहा हूँ। आज तुम को क्या हो गया। मेरी बात क्यों नहीं मानते हो। भाई लोग मेरी बदनामी करेंगे। कहेंगे, देखो, क्रटो ने सुकरात के लिये कुछ भी तो नहीं किया। अरे भाई करता क्या, कुछ करने के काबिल भी तो नहीं। समय पड़ने पर कौन किस के काम आता है। सभी तोते की तरह आंखें बदल लेते हैं।

यह दुनिया दोरंगी है। पल में तोला और पल में माशा हो जाती है। बनी के सब यार और बिगड़ी का एक भी नहीं। लोभी लालची है। परले दर्जे का कंजूस है। कहीं दो पैसे खर्च न हो जाय इसलिए दूर दूर ही फिरता रहा इत्यादि अनेक प्रकार से लोग मुझ पर तानें कसेंगे। उनको क्या उत्तर दूंगा। मित्र की अपेक्षा धन को अधिक महत्त्व देने के समान संसार में और कोई महा पाप नहीं है। एक मित्र पर आपत्ति आने पर दूसरे का भी कुछ कर्त्तव्य होना चाहिये।

सु०—भाई साहब ! यह परलोक यात्रा का शुभ समय है। इस समय दुनियादारी

की बातें करना उचित नहीं है। श्वान रूप संसार है, भूषण दे झक मार। लोगों के कहने की कुछ चिन्ता मत करो। यह देखो कि बुद्धिमान् लोग क्या राय रखते हैं और यह भी देखो कि अपना दिल क्या कहता है। बुद्धिमान् लोग अपने पक्ष में हैं गे एक सुजान का मुकाबला अजान सौ भी नहीं कर सकते। इस समय आप का कर्त्तव्य यही है कि जो कुछ होता जाये उसे सन्तोष पूर्वक सहते जाएं। फिर मेरी सम्मति सुनो! मैं आप को अपना परम हितैषी मित्र समझता हूं। फिर किसी की क्या चिन्ता।

कूटो०—प्रिय मित्रवर्य! लोगों के पीछे भी

लगना ही पड़ता है। देखो, आप को यहां तक लोगों ने ही पहुंचाया है। यदि जमाना आप के पक्ष में होता तो यह नौबत क्यों आती।

सु०—जमाना हमारे पक्ष में तभी हो सकता था जब कि हम ठकुर सुहाती—उन के अनुकूल बातें करते। जितनी बुद्धि उनके पास है, उतनी ही हम अपनी बुद्धि काम में लाते। तभी वे प्रसन्न हो सकते थे। ऐसा करते तो हम अपनी शेष बुद्धि को कहां रखते। उस के रखने से हमें लाभ भी क्या था। हमारे अन्दर विशेषता भी क्या होती। लोग उस विशेष बुद्धि से लोगों को जगाने का ही काम लिया जाना उचित था।

हम ने काफी लोगों को जगा भी दिया है। अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर के ही चले हैं। फिर अफसोस की क्या बात है। जो लोग नहीं जाग सके, उन्होंने ही हमारे साथ यह व्यवहार किया। इस व्यवहार से तो उन्होंने स्वयं ही यह सिद्ध कर दिया है कि हम वास्तव में सोये पड़े हैं। सुकरात ने हमें जगाने का जो प्रयत्न किया सो ठीक था। भाई साहब! मैं तो देखता हूँ कि सब कुछ हमारे ही अनुकूल हो रहा है। इन बातों को समझते तो आप भी हैं, मगर इस समय आप को मित्र मोह ने दबा लिया है।

क्रूटो०—भाई जान— मुझे तो मित्र मोह

होना ही था, यह तो आप को भी हो गया प्रतीत होता है। अन्यथा आप मेरी बात मान लेते । आप को यह विचार सता रहा होगा कि यदि मैं अपने मित्र क्रूटो के साथ भाग गया तो सरकार खोज कर भगाने वालों को भी पकड़ लेगी। उन का सब कुछ जब्त कर लेगी। अब मुझ (सुकरात) पर ही आपत्ति आयी है, फिर सब पर आ जायेगी। भाई सुकरात जी ! ऐसा विचार मत करो। ये तो साधारण बातें हैं। मैं तो इन से भी कई गुणा अधिक सहने को तैयार हूँ। इसलिये मेरी विनीत विनती मान कर भाग चलो।

सु०—भाई ! जब तुम मेरे लिये इतना कुछ

करने को तैयार हो तो स्वभाव से ही मुझे इन बातों की चिन्ता होनी चाहिये। इन की ही क्या बात है ऐसी ऐसी और भी हजारों चिन्तायें हो सकती हैं ऐसी चिन्तायें करना मेरा कर्त्तव्य है। मेरा यह भी कर्त्तव्य है कि मैं अपनी आपत्ति का टोकरा तुम्हारे सिर पर न रख दूं,

कूटो०—भ्राताजी! हमारी और आपकी आपत्तियां अलग अलग नहीं, एक ही हैं। फिर इन चिन्ताओं का कोई लाभ नहीं। हम ने सब प्रबन्ध ठीक कर रखा है। पुलिस का मुहं तो थोड़े से धन से बन्द हो जायेगा। आप संकोच न

न करें। जेल से बाहर बीसियों धनी मित्र आवश्यकता से भी अधिक धन लिये खड़े हैं। उन को आप के लिये अपनी थैलियों के मुंह खोलने में कोई संकोच नहीं है। विदेश में भी इसी प्रकार के हमारे मित्र अनेक हैं। जहां तक प्रबन्ध का सम्बन्ध है, उस में कोई कमी नहीं है, किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है।

आप हमारी बात न मान कर और शत्रु तथा विरोधियों के हाथ के खिलौने बन कर अधर्म तथा पाप कमा रहे हैं। तुम जीवित रहोगे तो कितने ही नरप-शुओं को मनुष्य ही नहीं देवता भी बना दोगे। आप इन को मझधार में

छोड़ कर, अनाथ बना कर, क्यों जा रहे हैं? मालूम होता है कि अब तुम कष्टों से घबराने लग गये हो। इसी लिये इस धार्मिक युद्ध क्षेत्र से पीछे हटे जा रहे हो। यह वीर सपूतों का काम नहीं है। तुम्हें अदालत में जा कर यह प्राण दण्ड स्वीकार ही नहीं करना चाहिये था। इस से तो तुम्हारा डरपोकपन तथा भीरूपन ही प्रकट हो रहा है। इतने बुद्धिमान् हो कर भी बुद्धुओं जैसा काम कर बैठे। हाय! लोग क्या कहेंगे। एक भूल तो हो गयी। अब दूसरी भूल मत करो। जल्दी उठ कर भाग निकलने को तैयार हो जाओ।

भाई सुकरात मेरी बात मान लो।

में हाथ जोड़ने, पैरों में पगड़ी रखने तथा नाक रगड़ने को भी तैयार हूँ। किसी तरह मानो भी गे। या गुड़ का गोबर बना कर ही रहोगे।

सु०—भाई छूटो! धीरज धरो। सब्र करो। घबराओ मत। घबराहट में कार्य बनने के स्थान पर बिगड़ जाया करता है। शान्त हो जाओ।

जो तुमने धर्म अधर्म की बात कह डाली है, उस पर मैं अवश्य ही विचार विमर्श करूंगा। देखो, पहले ठन्डे दिल से सोच विचार लेते हैं। यदि भाग निकलना न्याय और धर्म मालूम हुआ तो भाग निकलूंगा। धर्म और न्याय की रक्षा के पीछे तो यह सब

झंझट किया है। यदि भागना ही धर्म है और मरना अधर्म है तो फिर यह तो और भी आसान है। जब मरने जैसे कठिन काम के लिये तैयार हो गया हूँ, तब भाग निकलना तो मामूली सी बात है।

मृत्यु दण्ड से पहले हमारा जो सिद्धान्त था, वही सिद्धान्त अब होना चाहिये। मृत्यु दण्ड का हमारे सिद्धान्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। यदि हमने मौत की सज़ा से प्रभावित होकर अपना सिद्धान्त बदल दिया, नया मार्ग अपना लिया तो मेरा जीवन भर का सारा कार्य बकवास मात्र रह जायेगा। अच्छा हमें अच्छी राय माननी चाहिये

या बुरी ?

कृटो-अच्छी राय माननी उचित है।

सु०-अच्छी राय मूर्खों की होती है या मति-
मानों की ?

कृटो-मतिमानों की।

सु०-शिष्य को अपने गुरु की ही सम्मति
माननी चाहिए या सब की ?

कृटो-केवल गुरु की ही माननी योग्य है।

सु०-यदि शिष्य केवल एक आदमी की
अर्थात् अपने गुरु की सम्मति न माने
तथा शेष सब आदमियों की मानने
लग जाये तो परिणाम कैसा रहेगा ?

कृटो-ऐसा शिष्य नुकसान उठायेगा।

सु०-हमें भी इसी प्रकार इस विषय के विद्वान्
मनुष्य की ही राय माननी चाहिये, जिस

किसी को नहीं।

कृटो—हां आप ठीक कहते हैं।

सु०—स्याने लोग यही कहते हैं कि शरीर की अपेक्षा विवेक (ज्ञान) अधिक कीमती है। फिर हमें शरीर की रक्षा करनी चाहिए या विवेक की।

कृटो—इस हिसाब से तो विवेक की ही रक्षा करनी चाहिये।

सु०—ठीक। यही विवेक हमारा एक गुरु है। यदि हम इसकी बातें नहीं मानेंगे तो हानि उठायेंगे। जैसा कि तुम ने अभी स्वीकार किया है। अच्छा अब विवेक यह पूछता है कि संसार में नेकी से जीना उचित है या बदी से ?

कृटो—नेकी से ही जीना उचित है।

सु०—नेकी से जीना, मान पूर्वक रहना, धर्मात्मा बन कर रहना—इन सब बातों का एक ही मतलब है या भिन्न भिन्न ?

कूटो—सब का मतलब एक ही है, समान है।

सु०—जेलरों को रिश्वत देना, चुपके से भाग जाना, देश विदेश में खाक छानते और मुंह छिपाते फिरना, लोगों को धोखा देना आदि बातों को विवेक धर्म मानता है या अधर्म? इन से हमारी नेकी होगी या बदी?

कूटो—आप की ये बातें तो ठीक हैं, पर किया क्या जाये ?

सु०—मनुष्य को सम्पति में ही धर्म करना चाहिये और विपत्ति के समय अधर्म कर लेना चाहिये—क्या आप इस सिद्धान्त

को अच्छा समझते हैं?

कृटो-नहीं, धर्म तो सदा ही करना चाहिए। विपत्ति के समय तो धर्म को छोड़ना ही नहीं चाहिये।

सु०-अब मुझे मृत्युदण्ड मिला है। इसके कारण मुझे धर्म छोड़ देना चाहिये या नहीं।

कृटो-आप को इस कारण से धर्म नहीं छोड़ना चाहिये।

सु०-तो फिर मुझे छल कपट से भागना भी नहीं चाहिये।

कृटो-हां भागना तो नहीं चाहिये, परन्तु किया क्या जाये?

सु०-बुराई और पाप का एक ही अर्थ है या अलग अलग!

क्रटो–एक ही है ।

सु०–जो हमारी बुराई करता है, वह पाप करता है या नहीं ?

क्रटो–जरूर पाप करता है ।

सु०–यदि हम किसी की बुराई करें तो वह पाप है कि नहीं ?

क्रटो–बुराई तो चाहे कोई किसी अवस्था में करे, वह पाप ही है ।

सु०–एथैन्स वासियों ने मेरे साथ बुराई की है वे पापी हुए या मैं ?

क्रटो–आप क्यों, वे ही पापी हुए ।

सु०–हम उनके साथ बुराई करें तो पापी हम होंगे या वे ?

क्रटो–वे क्यों, हम ही पापी होंगे ।

सु०–इस हिसाब से एथैंसवासी पापी हुए और

हम धर्मात्मा हुये। फिर जीत किस की हुई ?

कृटो—इस हिसाब से तो जीत हमारी ही हुई।

सु०—हार किस की हुई ?

कृटो—एथैंस वासियों की ?

सु०—यदि हम भाग निकलें तो फिर हार किस की होगी ?

कृटो—इस हिसाब से तो हार फिर अपनी हो जायेगी।

सु०—इस का साफ मतलब यह है कि मोर्चा मारे बैठा हूं, जीत मेरे हाथ में है, हार उन के हाथ में। भाग निकले तो अपनी हार हो जायेगी। इस लिये मैं भागने को तैयार नहीं हूं। बुराई के बदले बुराई करना भी बुराई है। अच्छा बताओ

हमें सत्य का पालन करना चाहिये या झूठ का ?

क्रूटो–सदा सत्य का ही पालन करना योग्य है।

सु०–अब भागने की योजना या स्कीम बना रहे हैं। यदि कोई सरकारी अफसर आ कर मुझ से पूछ ले कि सुकरात! इस समय तुम क्या सोच रहे हो ? तुम्हारे मन में क्या है ? तब मुझे क्या उत्तर देना चाहिए ?

क्रूटो–बस मैं समझ गया कि तुम भागना नहीं चाहते। भागो कैसे। इस के लिये हिम्मत चाहिए। सो तुम्हारे पास दीख नहीं रही।

सु०–कानून देश का पिता है। पिता की

आज्ञा माननी आवश्यक है। इस लिये मैं कानून का पाबन्द हूं। कानून अर्थात् हम सब का पिता भागने की आज्ञा नहीं देता। अतः भागना अधर्म और पाप है।

यदि मैं भाग कर जाऊं तो किसी विदेश में ही शरण लेनी पड़ेगी। यदि वहां मुझे कोई पहचान कर यह कहे कि सुकरात ! तुम सत्तर साल के बूढ़े ठट्ठर हो गये हो, कबर में पैर लटकाये बैठे हो, न जाने कब पैर फिसल जायें, कितना और जीना चाहते हो, क्या अमर होना चाहते हो, जीने की बहुत इच्छा है, क्या अब तक जी कर पेट नहीं भरा, क्या जीना तुम को इतना प्रिय—प्यारा है कि इस के लिये देश पिता कानून की भी हत्या कर

डालो, तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? इस लिये भी भागना सर्वथा अनुचित है। बोलो कूटो! तुम्हारी क्या राय है ?

कूटो—मेरी युक्तियां समाप्त हैं। अब और अधिक बोलने की मुझ में कोई शक्ति नहीं। हां, इतना अवश्य कह दूं कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई।

सु०—जब बोलने की शक्ति नहीं रही, तब चुप रहना—मौन साधना ही अच्छा है। जब श्री भगवान् जी की यही इच्छा है, तब हमें कोई चिन्ता न कर के इस का सहर्ष स्वागत करना चाहिए।

महाप्रयाण

(सुकरात की स्वर्ग यात्रा)

आज सुकरात को विषपान कराया जाना है। इस लिये उस की हथकड़ी बेड़ी खोल दी गयी हैं। चारों तरफ़ सख्त पहरा है। सुकरात की स्त्री जनथीपी अपने बच्चों सहित प्राण प्रिय जीवन धन के अन्तिम दर्शन करने आई है। दर्शन करने के बाद सुकरात उसे आदर पूर्वक वापिस भिजवा देता है। वह रोती धोती चली गई।

सुकरात शान्ति की मूर्ति बने बैठे हैं। इतनी लम्बी यात्रा करनी है। पर उन को कोई चिन्ता नहीं है। हिमालय की तरह धीर समुद्र की तरह गम्भीर तथा आकाश की तरह उदार मुद्रा में वर्तमान हैं। पास वाले

लोगों को सुना कर बोल रहे हैं कि सुख और दुःख का बहुत गहरा सम्बन्ध है। ये दोनों एक साथ तो कभी नहीं रहते। हां जहां एक आ जाता है तो वहां फौरन ही दूसरा भी आ धमकता है।

कहते हैं कि एक बार सुख और दुःख में किसी बात पर बहुत तकरार हो गयी। तकरार यहां तक बढ़ गयी कि एक दूसरे का जानी दुश्मन बन गया। आपस में मुक़दमे बाजी तक नौबत पहुँच गयी। कई कचहरियों में केस गया, परन्तु कोई भी उन की तक-रार का उचित निर्णय नहीं कर पाया। घूमते घुमाते और फिरते फिराते उन का मुकद्दमा परमात्मा के दरबार में पहुंच गया।

परम दयालु परमात्मा ने दोनों को सम्बो-

धित करके कहा कि अरे भोले भक्तो ! आपस में क्यों लड़ते हो । लड़ाई में वह शक्ति कहाँ जो मेल मिलाप में है आपस की फूट ने संसार के इतिहास में काफी रंग चढाये हैं। उस के बहुत खोटे परिणाम निकले हैं। उन खोटे परिणामों से ही कुछ लाभ उठालो । दो लड़े तीसरा फायदा उठाये । जाओ राजीनामा करके मेल मिलाप से रहो । दोनों वहीं खड़े रहे । भला कट्टर पन्थियों में भी कभी समझौता होते देखा है ! विश्व विधाता परम पिता परमात्मा को उनकी यह चेष्ठा बहुत अखरी । अपने आसन से उठ कर मेल कराने के लिये सुख और दुख दोनों की पूंछ परमात्मा ने अपने हाथों से बांध दी । तब से सुख दुःख एक दूसरे के साथ घिसटते फिर रहे

हैं। जहां इन में से एक आता है, वहां दूसरा भी उस की पूंछ के साथ जबरदस्ती खिंचा चला आता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस संसार में सुख दुःख का चक्र चलता ही रहता है। सो इस से घबराना क्या।

आत्महत्या पाप है दूसरे के हाथ से प्राण घात हों तो बलिदान है। मरने के पश्चात् भी जीवन प्राप्त होता है। परन्तु वह जी-वन धर्मात्माओं, सत्यवादियों के सुख का कारण और पापात्माओं असत्यवादियों के लिए वही जीवन दुःख का कारण बन जाता है मरते समय आनन्द मनाने से परलोक में उत्तम गति प्राप्त होती है। शरीर से जीवात्मा का वियोग (जुदाई) मृत्यु है और शरीर से जीवात्मा का संयोग (मेल) जन्म या जीवन है।

संसार में जितने झगड़े हैं, उन सब का मूल कारण धन है। धन के बिना शरीर की रक्षा नहीं होती, जीवन यात्रा नहीं चलती। इसलिये शरीर की ही सेवा करते करते जीवन व्यतीत हो जाता है, आयु बीत जाती है। शास्त्र वार्ता और ज्ञान चर्चा का कभी अवकाश ही हाथ नहीं आता। मनुष्य जैसा आता है, वैसा ही चला जाता है। बल्कि यों कहिये कि अपनी जीवन-चादर पर दाग लगा ले जाता है। वासनायें बहुत प्रबल होती हैं। इन के दाग से बेदाग रहना ही परम पुरुषार्थ है।

जिस का मन शुद्ध है, वह मौत से कभी नहीं डरता, सदा उसका स्वागत करने को सन्नद्ध (तैयार) रहता है। जिस का मन

अशुद्ध हैं, वह मौत से सदा भयभीत रहता है। अपने ही अन्दर रहने का अभ्यास करने से आन्तरिक शुद्धि प्राप्त होती है। इसी आन्तरिक शुद्धि से मनुष्य मुक्त हो जाता है। यह कार्य सच्चे ज्ञानियों का ही है और किसी का नहीं। सच्चे साहस के दर्शन ज्ञानियों में ही होते हैं। ज्ञानी लोग संयम द्वारा कुवासनों को दवा कर इस शरीर के मोह को वशीभून काबू कर लेते हैं।

जिस धर्म के साथ ज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं वह धर्म वास्तविक धर्म नहीं। वह तो धर्म का ढोंग और ढकोसला मात्र है। कुछ लोग एक इन्द्रिय को सुख पहुँचाने के लिये अन्य इन्द्रियों का दमन कर लेते हैं। यह संयम नहीं। सयम का मखौल और मजाक है।

इस तरह से असंयम द्वारा संयमी बनने का ढोंग भूलकर भी मत रचो।

भौतिक इन्द्रियों द्वारा तो केवल साकार (सूरत वाली) वस्तुओं का ही ज्ञान होता है। एक रस रहने वाली निराकार सत्ता का बोध तो केवल बुद्धि में ही रहता है। जड़ शरीर की पूजा से स्वभाव भी जड़ जैसा बन जाता है। ज्ञान प्रिय लोगों को देवताओं का शरीर मिलता है। सच्चे ज्ञानी पुरुष संयमी तथा शूरवीर भी होते हैं।

संसार में अति की गिनती कम है। अति भले मनुष्य बहुत कम हैं, अति बुरे भी बहुत कम हैं। संसार में अधिक गिनती उन्हीं की है, जो न अति बुरे हैं और न ही अति भले हैं। अपने ही को बुद्धि का ठेकेदार

मत समझो। इस संसार में दूसरों का भी
दखल है। किसी की बात से इसलिये सहमत
मत होवो कि वह अमुक व्यक्ति की है।
बल्कि उस से इसलिये सहमति प्रकट करो
कि वह सच्ची है।

आत्मा पूर्ण रूप से पवित्र हो तो उस
में पाप का प्रवेश नहीं हो सकता। होगा तो
वही जो उसको मंजूर है, मगर हमें हिम्मत
नहीं हारनी चाहिये। देखो, छोटा सा गज
कितने बड़े मीलों को नाप डालता है।
एक मनुष्य छः फुट लम्बा है, दूसरा छः फुट
एक इंच। यह दूसरा व्यक्ति पहले से एक इंच
बड़ा हुआ। देखो, इस छोटी सी इंच ने एक
मनुष्य को लम्बा बना दिया। इसलिये
छोटी छोटी चीजों का भी पूरा पूरा ध्यान

रखना चाहिये।

कोई भी विरोध स्वयं अपना ही विरोध नहीं कर सकता। कोई आदमी कितना ही होशियार हो, अपने कन्धे पर स्वयं नहीं चढ़ सकता। सात एक अयुग्म अर्थात् विषम (दो पर पूरी न कटने वाली) संख्या है। पांच भी इसी तरह से अयुग्म(असमान) संख्या ह। इन दोनों को जोड़ो तो सात जमा पांच= बारह। यह बारह की संख्या युग्म (दो पर कटने वाली) हो गयी। दो डरपोक आदमी एक साथ मिल कर इसी प्रकार से निडर बन सकते हैं, दो बुरे मिल कर भले बन सकते हैं। इसका यह मतलब है कि उलटी बातों का नतीजा भी सीधा निकल सकता है।

मन भर खीर में एक तोला विष मिला

दो। सारी खीर विषैली बन जाती है। अब तोला भर विष में मन भर खीर मिलाओ, नतीजा पहले वाला ही है कि खीर विषैली बन गयी। मन भर खीर में वह शक्ति नहीं कि तोला भर विष को भी खीर बना सके। इस के विपरीत तोला भर विष में वह शक्ति है कि मन भर खीर को अपने समान विषैली बना डालता है। यह क्यों ? क्योंकि बुराई में बहुत शक्ति होती है। इसलिये बुराई से बचना चाहिये। क्यों जो बुराई में भलाई से अधिक शक्ति होती है तो हमें शक्तिशाली बनने के लिये बुरा ही क्यों बन जाना चाहिये? बुराई केवल तोड़ फोड़ का काम करती है, रचना का नहीं। भलाई रचनात्मक कार्य करती है। बुराई इन्सानियत को छिन्न भिन्न

कर देती है। इसके विपरीत भलाई इन्सानियत की रक्षा करती है। यदि तुम अपना नाश चाहते हो तो बुराई से शक्तिशाली बनो, यदि अपना सुधार और उन्नति चाहते हो तो भलाई को ही धारण करके शक्तिशाली बनो।

देखो, आठ युग्म (दो पर पूरी कटने वाली) संख्या है और एक अयुग्म (दो पर पूरी न कटने वाली) संख्या है। अब दोनों को जमा करो तो नौ भी अयुग्म संख्या बन गयी। एक में वह शक्ति है कि आठ को भी अपने समान बना लिया अर्थात् एक अयुग्म है, नौ भी अयुग्म है। इतना कुछ होते हुये भी संसार में जो काम आठ की संख्या कर सकती है, वह एक की संख्या नहीं कर सकती। आठे का

पहाड़ा चलाओ। एक आठा आठा, दो आठे सोलह, तीन आठे चौबीस इत्यादि। हर बार आठ बढ़ जाता है और आगे आगे बढ़ता ही जाता है। अब एक का पहाड़ा चलाओ। एक का पहाड़ा चलता ही नहीं, एक की तो गिनती चलती है। सो भी इस तरह से—एकम एका, दोकम दूवा, तीनकम तीया, चारकम चौका इत्यादि। यदि एक में से दो कम किया तो नतीजा सिफर है। या यों कहिये कि एक की गिनती गिनने वाला सब संख्याओं को कम ही बतलाता है क्योंकि एक स्वयं सब से कम है।

आत्मा का सिंगार न्याय, नियम, सत्य, संयम, साहस, ज्ञान, वीरता। परोपकार, सहानु-भूति आदि शुभ गुणों से करना उचित है,

गहनों से नहीं हो सकता। जहां तक हो सके दुःख को शान्तिपूर्वक सह लो। इसी में श्रेष्ठता है। मौत के समय एकान्त होना अच्छा है।

मित्रो ! प्रिय मित्र कुटो ने बहुत प्रयत्न किया कि मैं जेल में से भाग निकलूं। लो अब मैं भागता हूँ, इस जेल से भी और संसार से भी। उस भागने से तो फिर पकड़े जाने और मरने का भी भय था। इस भागने से सब भय दूर हो जायंगे। यदि दिल में दौड़ने की इच्छा हो जाये तो इस तरह की दौड़ दौड़ना, तुम सब प्रसन्न रहना। मेरे पीछे चीख चिल्लाहट न करना। ऐसा करोगे तो मेरी आत्मा को दुःख होगा और तुम्हारे विरोधी लोग तुम पर हसेंगे। मेरे मृतक

शरीर का अन्तिम संस्कार चाहे जैसे कर देना। मुझे किसी प्रकार का आक्षेप नहीं है। तुम्हें इसके करने में बहुत सोच विचार या आडम्बर नहीं करना चाहिये।

श्मशान भूमि में मेरे शरीर का संस्कार करते समय मन में यह न सोचना कि हम सुकरात का अन्तिम संस्कार कर रहे हैं बल्कि यह सोचना कि कुछ सड़ गल जाने वाली मिट्टी को ठिकाने लगा रहे हैं ताकि जीवित लोगों को उस में से बदबू न आये। सुकरात का तो उस समय स्वर्ग में स्वागत हो रहा होगा।

भाइयो ! मरने के बाद लोग स्नान कराया करते हैं। आज्ञा हो तो वह स्नान मैं स्वयं ही कर लूं फिर आप को कष्ट न होगा।

यह कह कर महर्षि सुकरात जी स्नानागार में स्नान करते हैं। बहुत प्रेम से स्नान किया। वहां से आकर सब को दर्शन दिये। शान्त होकर बैठ गये। घबराहट का कोई स्थान नहीं था। इस के बाद किसी से कुछ नहीं बोले। विष पिलाने वाला जल्लाद हाथ में विष का प्याला लेकर आ पहुँचा।

जल्लाद कहता है कि साथी सुकरात! मैंने आज तक तुम्हारे जैसा भला आदमी, सभ्य, शिष्ट, शान्त, सरल स्वभाव, महानुभाव सुशील सज्जन और सौम्य बन्दी कोई भी नहीं देखा, जो मरने के लिये इस तरह तैयार हो। मैं तुम को लाखों प्रणाम करता हूं, परन्तु फिर भी मन सन्तुष्ट नहीं है। हे मृत्युंजय सुकरात! मुझे भली भांति पता है कि

तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है, परन्तु फिर भी मैं तुमको यह विषपान कराने कैसे आ गया। जैसे तुम कानून से बन्धे हुये मरने को तैयार हो गये वैसे ही मुझे भी इस दुष्कृत (बुरे काम) के लिये बाध्य (मजबूर) होना पड़ा है। यह सरकार की आज्ञा है। अस्तु, मैं अन्तिम प्रणाम करते हुये यह विष का प्याला पेश करता हूँ। इसे शान्तिपूर्वक पान कर लेने में ही आपकी महत्ता, श्रेष्ठता तथा गौरव है। यह कह कर प्याला पेश करके रोने लग जाता है।

मृत्युजंय सुकरात प्रणाम का उत्तर देकर प्रसन्नतापूर्वक विष का प्याला हाथ में ले लेते हैं और कहते हैं कि देखो ,यह जल्लाद कितना शिष्ट, सज्जन, और हमदर्द आदमी

है। यदि इसे एथेंस नगरी का अधिकारी और वर्तमान अधिकारियों को जल्लाद बना दिया जाये तो कितना सुन्दर प्रबन्ध हो जाये।

अपनी इस महायात्रा को निर्विघ्न रूप से पूरी करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की के प्रसन्नतापूर्वक विष को पी लिया। मुख पर किसी प्रकार का विकार नहीं आया। सब लोग हाहाकार करके रोने लगे। सुकरात बोले भाइयो! यह क्या करने लगे हो। इस विघ्न को दूर करने के लिये तो मैंने यहां से स्त्रियों को पहले ही भिजवा दिया था। कोई अपने खोटे कर्मों के कारण से नरक में जाता हो तो रोना भी चाहिये। मैं तो स्वर्ग जा रहा हूं। इस लिये मंगल गान करो।

शरीर अकड़ता और हाथ पैर ठण्डे होते जा रहे थे। वस्त्र से मुख ढांप कर लेट गये। कुछ देर बाद शरीर थोड़ा सा हिला। वस्त्र उठा कर देखा तो मृत्युजंय महर्षि सुकरात महा निद्रा में सदा के लिये शान्त थे।

उपसंहार

हमारे शास्त्रों में महापुरुषों के जो गुण वर्णन किये हैं, महर्षि सुकरात के जीवन में वे प्रायः सभी मिलते हैं। इन गुणों के कारण ही लोग उनको महर्षि की पदवी देकर सम्मानित करते हैं। इन गुणों के कारण ही उनके चरणों में हमारा सिर बिना झुकाये ही झुक

जाता है। हम उनके बन जाते हैं। उन्हे अपना कर दिल को कुछ शान्ति सी मिलती है, तसल्ली सी होती है। सच है गुणों में बहुत आकर्षण शक्ति होती है।

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। इस कथन के अनुसार मृत्युंजय सुकरात ने अपना सारा जीवन ज्ञान चर्चा में ही व्यतीत किया। हर विषय में ज्ञान चर्चा ही उनका मुख्य उद्देश्य रहता था। सांसारिक वस्तुओं को कभी महत्त्व नहीं दिया। महा ठगनी माया के जाल में कभी नहीं फंसे। देहाभिमान और इन्द्रियों के सुखों से सदा दूर ही रहे। भोग विलास की तरफ कभी नहीं भागे। अतः एव लोभ लालच को अपने वश में कर लिया

था। इन वस्तुओं को आत्मोन्नति में विघ्न एवं बाधा समझते थे। इसी प्रकार का उपदेश देते थे।

जो कुछ ठीक समझना, उसे अवश्य ही करना, और जिसे ठीक न समझना, उसको कभी हाथ न लगाना, उनको परम प्रिय था। जितना स्वयं कर सकते थे, उतना ही कहते थे। हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के और वाले सिद्धान्त पर चलने वालों की पोल खोलने में विशेष रुचि रखते थे। वे दोषियों से नहीं अपितु उनके दोषों से द्वेष तथा घृणा करते थे। मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने में तन मन धन सब कुछ निछावर करने को तैयार रहते थे सचाई के सिद्धान्त से सुकरात को संसार का कोई भी

संकट दूर नहीं हटा सकता था । उन का जीवन सीधा सादा और आडम्बर रहित था। छल कपट तो उनको कभी छू भी नहीं पाया था। उनकी इन सीधी सादी बातों से चिढ़ कर कुछ देशवासी उनका घोर विरोध करने लग गये। स्थान स्थान पर उनको अपमानित किया। उनके प्रत्येक कार्य में बाधायें उपस्थित कीं। भला चोर को चांदनी से क्या प्रेम। शिकारी का तृणभक्षी हिरण से, माहीगीर का वारिवासी (जल में रहने वाली) मच्छली से, बिल्ली का चूहे से, कुत्ते का बिल्ली से, तीतर का दीमक से, बाज का तीतर से, नकुल (नेवला) का सर्प से, भेड़िये का भेड़ या बकरी से और दुष्ट का श्रेष्ठ से स्वाभाविक वैर होता है।

नाटक खेल खेल कर बुरी से बुरी नकल उतारी गयी। दुनिया भर के ऐब या दोष दिखाये गये। जो न होने योग्य था, सो भी किया। परन्तु इस विरोध ने सुकरात को और दृढ़ बना दिया। जिसका विरोध आरम्भ हो जाये उसकी सफलता की काफी आशा हो जाया करती है। इन बातों का सुकरात पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। क्या कभी मक्खियों के भिनभिनाने से मस्त हाथी पीछे हट सकता है? चांद को निकला देख कर कुत्ते भौंकने लगें तो क्या चांद वहीं छिप जायेगा? क्या चूहों की सेना से बिल्ली कभी घबराती देखी है? क्या बादलों से सूर्य का तेज नष्ट हो सकता है? क्या पवन भी कभी पर्वत को हिला सकती है?

क्या आकाश भर के तारे मिल कर सूर्य-चन्द्र का तेज मन्द कर सकते हैं ? फिर वे ओछे नरपशु सुकरात का क्या बिगाड़ सकते थे।

उनकी आत्मा सांसारिक बन्धनों से मुक्त थी। उस का तो सीधा सम्बन्ध विश्व-विधाता, जगत त्राता, परम पिता परमात्मा से था। पुलिसमैन सरकार के साथ सम्बन्ध होने से कितना कार्य कर गुज़रता है। फिर उस परम शक्ति के साथ सम्बन्ध रखने वाला महापुरुष तो बहुत कर सकता है। छोटे विचार के व्यक्ति सांसारिक पदार्थों के संग्रह और संचय से ही अपनी शक्ति मान लेते हैं। महापुरुषों के लिये वही वस्तुयें सारहीन होती हैं। उनको दूर से ही त्यागने में अपना

भला समझते हैं । महापुरुष जिन विषयों को तुच्छ समझ कर त्याग देते हैं, साधारण सांसारिक मनुष्य उन्हीं के लिये जूता पजारी करते हैं । मनुष्य वमन (कै) कर देता है । कुत्ते उसको खाने के लिये लड़ पड़ते हैं ।

आज कल के फसली लीडरों की तरह कोई दल नहीं बनाया । न ही पैसे दे कर अपने प्रशंसक रखे । अपने मुंह मियां मिट्ठू बनने का कभी प्रयत्न नहीं किया । छोटे दुकानदार बिक्री के सामान को फैला कर दुकानों पर रखते हैं । सोना चांदी और हीरे मोती बेचने वाले दुकानदार अपने माल को कभी फैला कर नहीं रखते । इस के विपरीत लोहे की तिजोरियों में बन्द कर के रखते हैं । ऐसा क्यों करते हैं ? इस लिये कि उन का माल

असली, सच्चा और कीमती होता है। इसी प्रकार सत्पुरुषों की प्रत्येक चेष्टा आडम्बर शून्य होती है। दिखावा उन को पसन्द नहीं सच्चे महात्माओं को इस की कभी आवश्यकता भी अनुभव नहीं होती।

महर्षि सुकरात का जीवन तो ज्ञान की एक करुण कहानी है। ज्ञानी महापुरुष किसी कार्य के करने में ही अपना अधिकार समझते हैं, उन का फल ईश्वर के आधीन समझते हैं। निष्काम भाव से देश की सच्ची सेवा करते हैं। उन की कथनी तथा करनी समान होती हैं। यही बातें हम सुकरात के जीवन में पाते हैं, गृहस्थ हो कर भी पूर्ण ज्ञानी तथा त्यागी थे। युद्ध भूमि में भी सफलता पूर्वक लड़ा। एक सच्चा सैनिक सिद्ध हुआ।

जीवन संघर्ष में भी सर्वत्र विजयी हुआ। हमारे देश के इतिहास में बड़े बड़े दानी हो गुज़रे हैं। स्त्री, बच्चे, यहां तक कि देह दान करने वाले भी देखने में आते हैं, परन्तु सुक़रात की तरह यश का दाता कोई विरला ही मिल सकता है। एक बार युद्ध में अपने एक साथी के प्राण बचाये। उस छोटे से युद्ध को जीत कर उसी साथी के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था।

साधारण सांसारिक लोग मृत्यु को दुनिया का सब से बड़ा दुःख मानते हैं। सुक़रात ने अपनी कथनी तथा करनी दोनों से यह सिद्ध कर के दिखा दिया। मौत इस जगत का स्वाभाविक तथा साधारण सिद्धांत है। इस नियम से कोई नहीं बच सकता। मृत्यु

स्वयं तो नीन्द के समान सुखदायी है। इस के नाम से ही लोग कांपते हैं। यह उन की बेसमझी है। मौत बुरी है या भली यह निश्चय करना हर एक आदमी का काम नहीं। परन्तु अधर्म बुरा है, अत्याचार, अन्याय बुरा है, यह तो सभी जानते हैं। इस लिये मौत से डर कर अधर्म या अन्याय करना महापाप और कायरता है। सुकरात ने इस नियम का अक्षरशः पालन किया।

इन की तर्क प्रणाली बिल्कुल स्पष्ट एवं पुष्ट थी। उस के सामने ठहरने की किसी की हिम्मत नहीं थी। परन्तु फिर भी उन्होंने गुरु या शिक्षक होने की कभी घोषणा नहीं की। सब से विनय तथा नम्रता से शिष्य भाव से प्रश्नोत्तर करते थे। नम्रता विद्वानों का भूषण

है। जिस वृक्ष पर फल लगते हैं, उस की डालियां अवश्य ही झुकती हैं।

मूर्ख होकर भी अपने आप को समझदार समझना बहुत ही भारी भूल है। इसी से अविद्या और अहंकार की जड़ जमती है। अविद्या और अहंकार मनुष्य को सदा संकट सागर में डुबाये रखने में ही अपनी सफलता समझते हैं जिस दिन मनुष्य सच्चे मन से अपने आप को मूर्ख मान लेता है, उसी दिन से ज्ञान का आरम्भ हो जाता है। फिर शनैः शनैः वह ज्ञान उन्नत होता रहता है। यही सच्चा ज्ञान सिखाने के लिए सुकरात जीवन भर संकट झेलते रहे। अन्त में इसी पर निछावर हो गये इसका नाम है सच्चा बलिदान।

न्याय तर्क सुकरात को प्राणों से भी अधिक

प्यारी थी। इसको जीवन भर निभाया। डैल्फी के देवता ने सुकरात को सब से अधिक बुद्धिमान कह दिया। सुकरात देववाणी को झूठी नहीं कह सकते, परन्तु अपने आप को सब से अधिक बुद्धिमान् समझना भी ठीक नहीं समझते थे। वह संशय सागर में गोते खाने लगे। निदान—सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे—वाली कहावत के अनुसार स्याने सुकरात ने एक सूत्र सज्जित (तैयार) किया। वह सूत्र यह है—मैं वास्तव में मूर्ख हूं और अपने आप को समझता भी मूर्ख ही हूँ अर्थात् मैं जैसा हूँ वैसा ही अपने आप समझता हूँ। इस लिए मेरे पास सच्चा ज्ञान है। दूसरे लोग भी वास्तव में मेरे जैसे ही मूर्ख हैं, परन्तु वे अपने आप को समझते हैं समझदार। इस लिये उन के

पास झूठा ज्ञान है। यही कारण है कि डेलफी के देवता मुझे सब से अधिक बुद्धिमान् कहते हैं। इसे कहते हैं अहंकार की हत्या।

सुकरात ने न्यायालय में हाथ-पैर नहीं जोड़े क्यों? क्योंकि सुकरात अपने आप को निरपराध समझता था। जब कोई अपराध ही नहीं किया, तब हाथ पैर किस लिए जोड़ने थे। हाथ पैर जोड़ने का अर्थ यही होता है कि सुकरात अपने आप को अपराधी समझता था अपराध सिद्ध होने पर दण्ड मिलना आवश्यक था। दण्ड से बचने के लिए न्यायाधीशों को रिश्वत देता। रिश्वत के लिए धन नहीं था। इस लिए खुशामद और चापलूसी करता यदि जज खुशामद को नहीं मानते तो सारा प्रयत्न व्यर्थ जाता। यदि खुशामद को मान

लेते तो न्याय का नियम भंग हो जाता। इस का पाप भी सुकरात के सिर पड़ता। इस तरह से अपराध या पाप डबल हो जाता। इसलिए सुकरात ने सत्स्वभाव से बात चीत की। इसे कहते हैं दृढ़ निश्चय।

सुकरात जेल में हैं। दो चार दिन में प्राण दण्ड मिलने वाला है। मतिमान् मगर मुख-मलीन मित्रमण्डल मुश्किल से कृष्ण-मन्दिर (जेल) में उनको भगा लाने के लिए पहुँचता है। लेकिन सरल स्वभाव, महानुभाव, सत्यप्रिय साधुवर्य, जनोपकारी, मानवहितकारी सुकरात उन को शान्त तथा युक्ति से समझा कर लौटा देते हैं। देश के कानून को पूज्य पिता की आज्ञा के समान सिर माथे पर धारण करते हैं। इसे कहते हैं देशपिता कनून की कीमती कदर।

दलवन्दी करके भोले भाइयों को भड़काना महापाप, कुत्सित (बुरा) कर्म और अधर्म समझते थे। इसीलिए सदा एकाकी अकेले ही रहे, किसी दल के नेता नहीं बने आजकल के फसली लीडरों को इन के जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि गीता को किसी के जीवन में पढ़ना चाहते हो तो महर्षि सुकरात के जीवन को पढ़ जाइये। भगवान् कृष्णजी गीता में जो कुछ कह गये हैं, सुकरात ने वह सब का सब अपने जीवन में घटा कर दिखा दिया है। जो कुछ मुँह से कहते थे, उसे कर के भी दिखाते थे। उनका जीवन क्रियात्मक क्रियाओं तथा चेष्टाओं का संचय एवं संग्रह है। वे आलिम वा अमल थे अर्थात् उनकी कथनी करनी समान थी।

अन्त में मृत्यु का दृश्य तो अतीव अलौकिक, अपूर्व, अनोखा, अनुपम एवं अतुलनीय है। मृत्युजंय सुकरात की मृत्यु उनके जीवन से भी अधिक शिक्षाप्रद है। महामहिम महर्षि सुकरात की मृत्यु से ही यह मालूम होता है कि मौत भी इतनी मनमोहनी होती है।

लब्धप्रतिष्ठ (प्रसिद्ध), कर्मनिष्ठ (खूब काम करने वाला), अति उत्साही, गुणग्राही, कर्मकानन पंचानन (कर्म रूपी जंगल का शेर), निष्काम सेवाव्रत–धारी, परोपकारी' लोक कल्याणकारी, निर्मम, मृत्युंजंय (मौत को जीतने वाला) महामहिम महर्षि सुकरात को बारम्बार कोटिशः प्रणाम करते हुये भी मन को सन्तोष नहीं हो रहा।

महर्षि सुकरात के जीवन से

प्राप्त शिक्षायें—

१–निर्धन कुलों में भी महापुरुष पैदा होते रहते हैं।

२–महापुरुष किसी भी देश और किसी भी काल में उत्पन्न हो सकते हैं।

३–संस्कार मनुष्य के मन पर प्रबल प्रभाव डालते हैं।

४–शुभ कर्मों द्वारा कोई भी मनुष्य महर्षि और देवता बन सकते हैं।

५–जाति पांति, ऊंच नीच, धनी निर्धन का भेद भाव नीच लोगों की कल्पना है।

६–मजदूरों के मकानों में अनेक महापुरुष जन्म लेते हैं, परन्तु साधनहीनता के

कारण अपना वास्तविक रूप विकसित नहीं कर पाते ।

७—सामाजिक सुधार के बिना सब सुधार व्यर्थ हैं । सामाजिक सुधार सब उन्नतियों का मूल है ।

८—कला कौशल और अनिवार्य (लाजमी) शिक्षा के बिना कोई भी देश उनन्त नहीं हो सकता ।

६—निपुण नाटककार, उत्कृष्ट उपन्यासकार तथा कुशल कवि देश की कायापलट देते हैं ।

१०—शिष्ट शिक्षा द्वारा मनुष्य महान् बन जाता है ।

११—कष्ट सहिष्णु तपस्वी, निर्भीक महापुरुष बनाने में दरिद्रता का काफी हाथ रहता।

है।

१२–स्वभाव अपना विशेष प्रभाव रखता है। सौम्य, सुन्दर, सरल स्वभाव वाले सज्जन संसार में अवश्य ही सफल होते हैं।

१३–अभ्यास का जीवन में विशेष स्थान है।

१४–तर्क-तुला पर तोले विना किसी की वात मान लेने से हानि की सम्भावना बनी रहती है।

१५–धीरा सो गम्भीरा। धैर्य सत्पुरुषों का सच्चा साथी होता है।

१६–नवयुवकों की उन्नति से ही समाज उन्नत हो सकता है।

१७–मृत्यु से कभी मत डरो, हां, अन्याय तथा अनाचार से सदा डरते रहना चाहिए।

१८–लड़ाइयों में लड़ने वाले लोग भी महा-

पुरुष बन जाते हैं।

१६–विशेष विशेष व्यक्ति गृहस्थ होते हुए भी विशुद्ध वैरागी देखे गये हैं।

२०–महापुरुषों को जीवन निर्वाह की चिन्ता नहीं होती, जिनको जीवन निर्वाह की चिन्ता सताती रहती है, वे महापुरुष नहीं बन पाते।

२१–जिज्ञासा (सीखने) के भाव से प्रेम पूर्वक प्रश्नोत्तर करने वाला पुरुष अवश्य ही प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।

२२–समीक्षक—पक्षपात रहित हो कर सब के गुण दोष समान रूप से दिखाने वाला व्यक्ति अवश्य ही सत्पुरुष एवं सौम्य सज्जन होता है।

२३–प्राणों की परवाह न करने वाला व्यक्ति

प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकता।

२४–धुन का पक्का पुरुष कुछ न कुछ कर ही गुजरता है।

२५–स्पष्टवक्ता न वंचकः—साफ साफ बातें करने वाला व्यक्ति वंचक (ठग) नहीं होता।

२६–पापी चाहे पहलवान भी क्यों न हो, उस से कभी भी डरना नहीं चाहिये। डरोगे तो महापुरुष नहीं बन सकते।

२७–द्वन्द्वों के वश में मत आओ।

२८–क्षमा वीरता का भूषण है।

२९–मित्र की तरह मृत्यु का स्वागत कर के कोई भी मृत्युजंय(मौत को जीतने वाला) कहला सकता है।

३०–लगन लग जाये तो कुछ भी कठिन

नहीं।

३१–ज्योति से ज्योति जगती है।

३२–काठ के साथ लोहा भी तर जाता है।

३३–सिखाने का दृष्टिकोण रखो, बदनाम हो जाओगे। सीखने का दृष्टिकोण रखो नेकनाम हो जाओगे।

३४–शारीरिक शक्ति का अपमान मत करो, दुनिया की दौड़ में पीछे रह जाओगे।

३५–गृहस्थाश्रम के आश्रय में रहते हुए भी यति, योगी और वैरागी बन कर रहो, महापुरुष कहलाओगे।

३६–गृहस्थ महापुरुषों की धर्मपत्नियां प्रायः कठोर-स्वभाव वाली देखी गयी हैं।

३७–धनोपार्जन की अपेक्षा ज्ञानोपार्जन में अधिक संलग्न रहो संसार-सागर से पार

उतर जाओगे ।

३८–महापुरुषों की लक्ष्मी से सदा अनबन ही रहती है, हां सरस्वती इनके चरणों की चेरी होती है ।

३९–निर्धन पति से पत्नी प्रायः रुष्ट ही रहती है । इसी लिए त्यागी महापुरुष घर गृहस्थी को छोड़ देते हैं ।

४०–अत्याचार जनता को जगा देता है ।

४१–शासन प्रणाली के बदल जाने से प्रायः सभी प्रणालियां बदल जाती हैं ।

४२–धर्म और अन्ध विश्वास का चोली दामन का सम्बन्ध है ।

४३–धर्म की व्याख्या लोकमत और लोक रुचि के अनुसार ही होती रही है ।

४४–यशोदाता अवश्य ही महापुरुष होता है ।

४५–अभियोग का निर्णय न्याय–नियमों के अनुसार होना चाहिए, भावुकता से नहीं।

४६–जिस राज सभा में अन्याय और अत्याचार होता है, उसे छोड़ देना ही इन्सानियत है।

४७–सब को एक लाठी से मत हांको।

४८–न्यायासन पर बैठ कर अन्याय का पक्ष लेना मनुष्यत्व नहीं।

४९-अन्याय युक्त आज्ञा किसी की भी मत मानो।

५०–मौत से डरने वाला व्यक्ति कोई आदर्श स्थापित नहीं कर सकता।

५१–वह न्याय क्या जो अन्याय से दबता है, वह पुण्य क्या जो पाप से घबराता है।

५२–आत्मिक बल से ही सच्चा मनुष्य बनता है।

५३—धन्य कौन ? जो अकेला भी अत्याचार का भरसक विरोध करता है।

५४—किसी एक सम्प्रदाय (फिरके) के पीछे लग कर गडरिये की भेड़ मत बनो।

५५—जो सिद्धान्त झूठे सिद्ध हो चुके, उनके पीछे लिपटे रह कर अपनी मूर्खता प्रकट मत करो।

५६—जो समाज या सभा सोसाइटी अपने आदर्श से गिर जाये, उसको त्याग देना ही बुद्धिमत्ता है।

५७—सत्पुरुषों को यह संसार स्वयं समाप्त करता रहा है।

५८—शत्रु मित्र सभी के पाये जाते हैं।

५९—प्रबल विरोध मनुष्य को अपने शुभ उद्देश्य में सफल बना देता है।

६०–अत्याचारी, अनाचारी और अन्यायी विरोध से बहुत घबराता है।

६१–अन्त भले का भला।

६२–जो अपने आप को समझदार समझता है,उसके मूर्ख होने में कोई सन्देह नहीं।

६३–जहां चाह वहां राह।

६४–अहंकार मनुष्य का जानी दुश्मन है।

६५–सत्यवादी के सत्य से अत्याचारी जन समूह काम्प उठता है।

६६–अवसरवादी केवल क्षणिक उन्नति ही कर पाता है, स्थायी नहीं।

६७–महापुरुष बनने की चाह है तो हिमालय से धीर, समुद्र से गम्भीर और आकाश से उदार बनो।

६८—जो अधिकारी झूठी बातें सुनने लग जाता है उसका नाश निकट ही समझो।

६९—न्याय निकट से निकट सम्बन्धी को भी क्षमा नहीं करता।

७०—भय बिन प्रीत नहीं।

७१—भय से नहीं, गुणों से प्रभावित होना सीखो।

७२—कला वही जिस से उत्तम फल मिले।

७३—प्राकृतिक धर्म (कानूने कुदरत) सदा एक रस रहता है, मानव-धर्म परिवर्तन-शील है।

७४—कर्त्तव्य पालन में तत्पर रहने से मनुष्य बहुत उन्नत हो जाता है।

७५—ज्ञान, भलाई, विद्या आदि किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं है।

७६–असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये इस संसार में बहुत मसाला है, परन्तु सत्य को सत्य सिद्ध करने के लिये मसाला बहुत कम है।

७७–जनता को अन्धेरे में रखना महापाप है।

७८–स्वार्थी दोष को नहीं देखता।

७९–किसी की झूठी बात का समर्थन करके अपनी बुद्धि का अपमान मत करो।

८०–सच्ची बात कहने के लिये तैयारी की आवश्यकत नहीं।

८१–झूठ बोलने वाले को कदम कदम पर प्रकरण और प्रसंग का ध्यान रखना पड़ता है।

८२–धूर्त और ठग हमेशा मीठा और युक्ति युक्त बोलता है।

८३–कड़वा बोलने वाला आदमी साफ़ होता है, मीठा बोल वाले के साफ़ होने में सन्देह रहता है। मधुर भाषी की अपेक्षा कटुभाषी अच्छा होता है।

८४–किसी के बोलने के ढंग को नहीं, उस की सचाई को परखो।

८५–क्षमा से उदारता प्रकट होती है। क्षमा-शील उदार होता है।

८५–पुराने विचार मनुष्य को घोर कट्टरपंथी बना देते हैं। नये विचारों से उदारता मिलती है।

८७–किसी की नकल उतारना भाण्ड का काम है।

८८–ईर्ष्या द्वेष मनुष्य को भीतर से खोखला कर देते हैं।

८९–बहकावट बहुत बुरी वस्तु है।

९०–संशय विनाशकारी होता है।

९१–दूध पानी छानने वाला अर्थात् न्याय करने वाला व्यक्ति अवश्य महापुरुष होता है।

९२–छली कपटी आदमी लोगों को अपने विरुद्ध होने का कभी अवसर नहीं देता।

९३–सत्यवादी के अनेक शत्रु पैदा हो जाते हैं।

९४–सच्ची बात आंख में उंगली की तरह लगती है।

९५–झूठ, सौ यत्न करने पर भी छिपी नहीं रहती। कभी न कभी उस की कली खुली ही जाती है।

६६-अनजान अपराधी नहीं माना जाता ।

६७-कानून मनुष्य को दण्ड देता है, समझा नहीं सकता ।

६८-जिस के पास सचाई बुद्धि तथा युक्ति हो, उस को जीतना कठिन है ।

६६-शरीर बल से बुद्धि बल की और बुद्धि बल से आत्मबल की अधिक महिमा है ।

१००-सांच को आंच नहीं ।

१०२-रूढ़ि या परम्परा के सामने सचाई की कोई पेश नहीं जाती ।

१०२-अन्ध विश्वासी सत्यमूक होता है ।

१०३-सचाई और कर्त्तव्य से मनुष्य बहुत बड़ा बन सकता है ।

१०४-अपमानित लज्जित और कलंकित हो कर जीने की अपेक्षा दिन में कई बार

मरना भी अच्छा है।

१०५—अन्याय का पक्ष लेने की अपेक्षा मौत अच्छी है।

१०६—यशोधन से बड़ा और कोई धन नहीं।

१०७—सहज पके सो मीठा। जल्दी पका सो जल्दी सड़ा।

१०८—हीजड़ेपन से सदा बचते रहो।

१०९—अन्याय की गति मृत्यु से भी तेज है।

११०—मौत के समय मनुष्य में भविष्यवाणी की विशेष शक्ति आ जाती है।

१११—अपने निन्दकों की जबान पर ताला या लगाम लगाने की अपेक्षा अपने दोषों को दूर करना अधिक अच्छा है।

११२—प्राणी मात्र चिर सुख चाहता है।

११३—इस नश्वर काया से अमर यश कमा

डालो।

११४–लोभ बड़ों बड़ों को भी अपने पंजे में फंसा लेता है।

११५–मित्र की अपेक्षा धन को अधिक महत्त्व देना महा पाप है।

११६–अपनी आपत्ति या भूल दूसरों के सिर मढ़ने से उन्नति नहीं कर पाओगे।

११७–विवेक को अपना गुरु बना लो।। भूल कम हुआ करेंगी।

११८–कानून देश का पिता होता है। इसका मानना हमारा कर्त्तव्य है।

११९–कानून की हत्या देश पिता की हत्या है।

१२०–कट्टर पंथी लोग समझौते के लिये किसी भी अवस्था में तैयार नहीं हुआ करते।

१२१–आत्म हत्या पाप है, कायरता भी है।

शुभ कर्म करते हुए दूसरे के हाथ से मारा जाना बलिदान है, वीरता भी है।

१२२-जीवात्मा का शरीर से संयोग (मेल) जन्म है और वियोग (जुदाई) मौत है।

१२३-संसार के सब झगड़ों का मूल कारण धन सम्पत्ति है।

१२४-अपने को ही बुद्धि का ठेकेदार समझने की भूल मत करो, घाटे में रह जाओगे।

१२५-इस दुनियां में दूसरों का भी दखल है।

१२६-बुराई में बहुत बल है, परन्तु है विनाशात्मक। भलाई में जो बल है वह रचनात्मक है।

१२७-आत्मा का सिंगार सत्य, संयम, साहस ज्ञान, वीरता, धीरता, न्याय, नियम, परोपकार, सहानुभूति आदि शुभ गुणों

से ही सम्भव है, गहनों से नहीं।

१२८—मौत के समय एकान्त होना अच्छा है।

१२९—गुणों में बहुत आकर्षण है।

१३०—चोर को चान्दनी की कोई चाह नहीं।

१३१—शिकारी का हरिण से, माहीगीर का मच्छली से, बिल्ली का चूहे से, कुत्ते का बिल्ली से, नेवले का सांप से और दुर्जन का सज्जन से बिना कारण ही वैर होता है।

१३२—अपने मुहं आप मियां मिट्ठू बन कर अपनी बेसमझी का सबूत मत दो।

१३३—सत्पुरुषों की प्रत्येक चेष्टा आडम्बर शून्य होती है।

१३४—सच्चे सज्जन सदा सादा रहते हैं।

१३५—महात्माओं की कथनी और करनी सदा

समान रहती है।

१३६–नम्रता विद्वानों का भूषण है।

१३७–अविद्या तथा अहंकार महा दुःखदायी हैं।

१३८–हत्या करनी जरूरी समझते हो तो अहंकार की कर डालो।

१३९–दबाव का परिणाम प्रतिकार है।

१४०–सफलता बाहर से नहीं, भीतर से मिलती है।

१४१–संशय से मित्र खोया जाता है।

१४२–दोषी समालोचना से बहुत घबराता है।

१४३–आपत्ति और विपत्ति शिक्षा देने वाले गुरु हैं।

१४४–बुराई बुरा काम करने में है उसे स्वीकार करने में नहीं।

१४५–दूसरों को दुःख देना पशुता है, स्वयं दुःख सहना मनुष्यता है।

१४६–दलील का दिवाला निकलने पर हुल्लड़ बाजी शुरु हो जाती है।

१४७–सिद्धान्तहीन लोगों के संग रह कर संकट मत खरीदो।

१४८–निन्दा मनुष्य को निर्मल बनाती है।

१४९–सत्य कहीं बाहर से नहीं आता, वह तो भीतर से ही जाग उठता है।

१५०–जब कुछ नहीं चाहिये। तब दबने की क्या आवश्यकता है।

